राजस्थान के तीर्थ

(राजस्थान के धार्मिक तीर्थस्थलों पर प्रतिनिधि संकलन)

प्रधान संपादक

परमेश्वर द्विरेफ

प्रकाशक

समाचारकेन्द्र चिड़ावा

संपादकीय

राजस्थान के तीर्थ नामक संकलन को पाठकों के समक्ष रखते हुए हर्ष का होना स्वाभाविक है। पर्याप्त समय से कार्यरत रहकर जो सामग्री उपलब्ध हुई है उसके सम्बन्ध में पूर्णतया संतोष तो नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी इससे हमें आत्मसन्तोष हुआ है।

हमारे देश में स्नान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जो कि मन और तन को पवित्रता के लिये अत्यावश्यक है। तीर्थों में स्नान करने से जहाँ शरीर में एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है वहाँ मन मे अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर भी प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राणी सांसारिक द्वन्द्वों से दूर प्रकृति को विराटता में मग्न रहकर तिर जाता है।

आज के युग में व्यक्ति अनेक प्रकार के चक्रव्यूह में उलझकर अपनी परम्परा को भूलता जा रहा है। अपने लोगों के प्रति कृतज्ञता शिष्टाचार, शालीनता पवित्रता को भी विस्मृत करता जा रहा है। फलस्वरूप ईर्ष्या, द्वेष, कलह, उद्दंडता का वातावरण फैला है जिसका निराकरण हमारी सांस्कृतिक परम्परा से ही संभव है, इसी दृष्टि से यह संकलन प्रस्तुत किया गया है, जो अपने ढंग का पहला प्रयास है।

यह एक आश्चर्य ही है कि प्रकृति को नियामक अदृश्य शक्ति ने मुझ से यह काम लिया और पूर्णता के लिये सहयोग भी दिया जो एक अलौकिक कार्य माना जा सकता है।

हमारे देश की परम्परा सनातन है जो अन्य विकसित दुनिया से कहीं बहुत पहले से है। आज भी अविछिन्न रूप से प्रवाहित है। जो इस प्रवाह में डूबता है वही तिरता है। तीर्थ हमारे लिये तारने वाले अमृत प्रवाह हैं जिनमें अवश्य अवगाहन करना चाहिए।

अन्त में मैं सभी सहयोगियों, जनसम्पर्क अधिकारियों लेखकों आदि का आभार प्रकट करता हूँ।

जिला जनसम्पर्क अधिकारी घनश्याम शर्मा, कल्याण (तीर्थ विशेषांक) तथा कथालोक आदि से भी लाभ उठाया गया है।

चिड़ावा **परमेश्वर द्विरेफ**

१ जून १९८७ सम्पादक

अनुक्रमणिका

तीर्थ — परिभाषा और महत्त्व

- नटवर जोशी

हर हिन्दू 'चार धाम' सप्तपुरियों तथा पुष्कर की तीर्थयात्रा कर अपने को सौभाग्यशाली मानता है। शेखावाटी का लोकमानस भी इससे भिन्न नहीं। 'वा-नर को धिरकार जिन्दगी लुहागर नहीं न्हाया' यह लोकभजन की कड़ी आपने भी अवश्य सुनी होगी। तीर्थयात्रा की साध हर हिन्दू के मन में होती है। सब प्रकार सुसम्पन्न होने पर भी बिना तीर्थयात्रा वह अपना जीवन सफल नहीं मानता। क्यों है यह तीर्थयात्रा की ललक? क्या हैं ये तीर्थ? और क्या है इनका महत्त्व- आइये विचार करें।

तीर्थ का प्रासंगिक अर्थ

तीर्थ शब्द का अर्थ है पवित्र करने वाला, तारने वाला। 'तॄ-प्लवन तरणयोः 'धातु से 'पातॄ तुदि वचि रिचि सिचिभ्य स्थक्' – इस उणादि सूत्र द्वारा थक् प्रत्यय करने पर – तीर्यते अनेन– जिससे तर जाता है – इस अर्थ में तीर्थं या अर्धचादि से तीर्थः यह शब्द निष्पन्न होता है।

अमर कोशकार अमरसिंह ने जलावतार अर्थात् नदी आदि में थाह या पार करने का स्थान अर्थात् घाट तथा उपकूप अथवा जलाशय को शास्त्र को ऋषि से सेवित जल को और गुरु को तीर्थ बताया है। विश्व प्रकाश कोशकार एवं मेदिनी कोशकार ने भी प्रायः यही बात मानी है। आचार्य हेमचन्द्र भी ऋषि सेवित जल को तीर्थ मानते है।

जिसके द्वारा मनुष्य पापादिकों से मुक्त हो जाय, तर जाय उसका नाम तीर्थ है। "तरति पापादिकं यस्मात्"। तीर्थ शब्द का आधुनिक ढंग से निर्वचन करें तो ती– से तीन एवं थं से अर्थ प्रयोजन लेना चाहिये अर्थात् जिससे तीन अर्थों पदार्थो– धर्म, काम एव मोक्ष की प्राप्ति हो वह तीर्थ कहलाता है। पदार्थ चार हैं जिन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय भी कहते हैं– धर्म–अर्थ काम, मोक्ष। इनमें अर्थ तो तीर्थ यात्रा में व्यय होगा हो बाकी तीनों धर्म काम, मोक्ष की सिद्धि तीर्थ यात्रा से होती है। सामान्यतः तीर्थ का शाब्दिक अर्थ है नदी पार करने का स्थान घाट। रूढ़ अर्थ में उस नदी, सरोवर मन्दिर या भूमि को तीर्थ कहा जाता है जहाँ ऐसी दिव्यशक्ति है कि उसके सम्पर्क में (स्नानादि के द्वारा) जाने पर मनुष्य के पाप अज्ञात रूप से नष्ट हो जाते हैं। यह सामान्यतः देखा गया है कि जहाँ तीर्थ है वहाँ के नद–नदी कूप, सरोवर में स्नान से ही तीर्थ यात्रा सफल मानी जाती है– इस प्रसंग में वे पवित्र जल ही तीर्थ के पर्याय है।

तीर्थ शब्द के अन्य अर्थ

जहाँ श्री भगवान् की कथा होती है वह स्थान तीर्थ है। पवित्र दर्शन साधु तीर्थ है। शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, सामदानादि उपाय, गुरु, मंत्री, अवतार तथा स्त्री रज को भी तीर्थ कहा गया है। भगवान् शंकराचार्य के शिष्यों की दशनामी साधुओं की परम्परा में अरण्य, आश्रम, सरस्वती एवं तीर्थ होते हैं आचार्य मध्व और उनके अनुयायी भी तीर्थ परम्परा में आते हैं। वीर शैवों के अष्ट वर्ग सस्कार मे एक संस्कार का नाम भी तीर्थ है। भगवान् का चरणोदक भी तीर्थ कहलाता है। वृहद् धर्म पुराण में ब्राह्मणों के चरण गायों की पीठ, बालकों के सिर तथा अपने दाहिने कान को तीर्थ कहा गया है।

तीर्थ के तीन प्रकार

(१) नित्य तीर्थ- कैलास, मानसरोवर, काशी, पुष्कर, लोहार्गल, गंगा, यमुना सरस्वती, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी गण्डकी आदि पवित्र नदियाँ नित्य तीर्थ हैं।

(२) भगवदीय तीर्थ- जहाँ भगवान् ने अवतार लिया, लीला की या किसी भक्त को दर्शन दिये वे स्थान भगवदीय तीर्थ हैं।

(३) संत तीर्थ- जो जीवन्मुक्त देहातीत परम भागवत या भगवत्प्रेम में तन्मय सन्त हैं वे मूर्तिमान तीर्थ है तथा उनकी जन्म भूमि तपोभूमि एवं निर्वाण भूमि भी तीर्थ हैं। इस प्रकार यह कैलाश से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामाख्या तक सम्पूर्ण भारत भूमि तीर्थ है। परम पवित्र है।

प्रकारान्तर से जंगम, मानस एव भौम- ये तीन तीर्थों के प्रकार हैं।

जंगम तीर्थ- निर्मलचित्त, ब्राह्मण, सन्तजन जङ्गम तीर्थ कहे गये हैं इनके सद्वाक्य रूपी निर्मल जल से मलिन जन शुद्ध होते हैं। "मुदमगलमय संत समाजु–जो जग जंगम तीरथ राजु।"

मानस तीर्थ- सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, सरलता, मृदुभापण ब्रह्मचर्य, दान, ज्ञान, दम, धृति, पुण्य ये मानस तीर्थ शास्त्रकारों ने कहे हैं। मनः शुद्धि को सर्वोत्तम तीर्थ कहा गया है।

भौम तीर्थ- जिस प्रकार शरीर के कुछ अंग पवित्र तथा श्रेष्ठ समझे जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ विशेष भाग महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें भूमि का प्रभाव एवं जल का तेज भी विशेप हेतु है मुनि महात्माओं का परिग्रह– आवासादि सम्बन्ध भी भूमि की पवित्रता में हेतु है। महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है—

प्रभावाद् अद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनिनां चैव तीर्थानां पुण्यता मता॥

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका, द्वारका–पुष्कर लोहार्गल, मानसरोवर, कैलाश, गंगादि पवित्र नदियों के तट, असंख्य पवित्र

स्थल, पवित्र सागर, नद-नदियां, कूप, जलाशय, प्रयाग-नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र जगन्नाथपुरी, बद्रिकाश्रम, श्री शैल, सिन्धु सागर संगम, सेतुबन्ध रामेश्वर गंगा सागर संगम आदि प्रधान भौम तीर्थ हैं।

तीर्थों का महत्त्व

ऋग्वेदमें- तीर्थ राज प्रयाग में स्नान दानादि करने वालों को स्वर्ग प्राप्ति की बात कही गई है।

अथर्ववेद- कहता है कि तीर्थों के सेवन से बड़े- २ पाप कट जाते हैं। बड़े- २ यज्ञानुष्ठानों का जो फल है- वही तीर्थ स्नान का फल है।

यजुर्वेद- भगवान् को तीर्थ में, नदी के जल में तथा तट में तटवर्ती छोटे २ तृणों में, कुशांकुरों में तथा जल के फेन में निवास करने वाला कहकर नमस्कार करता है- नमस्तीर्थ्याय च कुल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च।

महाभारत- तीर्थाटन, तीर्थाभिगमन को यज्ञानुष्ठान से भी बड़ा बतलाता है। इसके अनुसार ऋषियों का यह परम गु ह्य मत है कि दरिद्र व्यक्ति भी तीर्थ यात्रा से जो फल पाता है वह अग्निष्ठोम आदि यज्ञों द्वारा भो दूसरों को सुलभ नहीं।

विष्णु स्मृति- के अनुसार महापातकी-उपपातकी सभी तीर्थानुसरण से शुद्ध हो जाते हैं। जो शुद्धि अश्वमेध से संभव है वही तीर्थयात्रा से सुलभ है।

गयादि तीर्थों में जाने से पितृत्व भी तर जाते है। वे सदा यह कामना करते हैं कि हमारे कुल में कोई ऐसा उत्पन्न होवे जो गया जावे, नील वृष का उत्सर्ग करे या अश्वमेध यज्ञ करे। तीर्थानुसरण करनेवाला मनुष्य तियक् योनि में नही आता, बुरे देश में उत्पन्न नही होता - दुःखी नहीं होता।

तीर्थ स्नान का महत् फल

तीर्थों में स्नान का अत्यधिक महत्त्व है। सभी भौम तीर्थ पवित्र गंगादि नदियों - पवित्र जलों से युक्त है - वहां स्नान करने से ही तीर्थ यात्रा सम्पन्न

होती है। भारतीय संस्कृति एक मायने में स्नान संस्कृति है। कोई ऐसा दूसरा देश नही जहाँ स्नान का इतना अधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया हो। यहाँ तो जन्मते बालक को भी स्नान करवा कर पवित्र किया जाता है। कोई भी संस्कार हो - स्नान विना पूर्ण नहीं यहाँ तक कि अन्त्येष्ठि संस्कार भी स्नान से ही पूरा होता है। स्नान का जो आनन्द है जो महिमा है- उसको मर्म भारतीय ऋषि ही जान पाये हैं। त्रिकाल स्नायी- तपस्वी ऋषि ही। तीर्थ स्नान का तो महत्त्व ही अलग है। लाखों की सख्या में धर्मशील हिन्दू गंगादि नदियों में पवित्र तीर्थों में स्नान कर अपने को पवित्र करते हैं। ये माघ मेले, कुंभ मेले स्नान संस्कृति के मंगलाचरण ही तो हैं।

कोई ऐसा पुण्य नहीं जो तीर्थ स्नान से प्राप्त न होता हो, कोई ऐसा पाप नहीं जो तीर्थ स्नान से दूर न होता हो – कोई ऐसा पुरुषार्थ नहीं जो तीर्थ स्नान से न मिल सकता हो। तीर्थ में निवास, तीर्थ में स्नान, तीर्थ में सन्ध्या तर्पण, श्राद्ध–यज्ञ एवं दान का कोटिगुना फल शास्त्रों में कहा गया है। जो तीर्थ में जायें एवं स्नानादि कर यथाशक्ति दान न दें– उसका तीर्थ स्नान तीर्थ यात्रा ही कैसी? तीर्थ वास के लिये मनुष्य को सर्वात्मना भगवदिच्छा पर रहना चाहिये। कोई कामना न कर पवित्राचरण से सभी का हित चिन्तन करना चाहिये। तीर्थ यात्री को एकाशीया मिताहारी संयत आचरण वाला एवं भूमिशायी होना चाहिए। कटु वचनों से दूर रहना चाहिये पर द्रव्य, पर स्त्री तथा परापकार का सर्वथा त्याग करना चाहियें।

परान्न तथा पर भोजन तो सर्वथा त्याग देना चाहिये। ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक भगवच्चिन्तन करना चाहिये। तीर्थ यात्रा में स्पर्श दोष नहीं रहता। कुरुक्षेत्र, बद्रिकाश्रम, जगन्नाथपुरी एवं गया को छोड़ कर तीर्थ में मुण्डन करवाने का नियम है। उपवास करना चाहिये। तीर्थ में लोभवश दान नहीं लेना चाहिये। तीर्थ यात्रा में सूतक आदि का दोष नहीं रहता। अंग, बंग कलिंग, सौराष्ट्र एवं मगध में यात्रा कर पुनः संस्कार कराना कहा गया है किन्तु यहाँ भी तीर्थ यात्रार्थ जाने का दोष नहीं कहा है।

तीर्थ में वर्ज्य- तीर्थ में सवारी, छत्रपाद का धारण, व्यापार तथा दान लेने से पुण्य क्षय होता है। तीर्थ के समीप शौच, उसमें कुल्ला, बाल झाड़ना, निर्माल्य डालना, मैल छुड़ाना, शरीर मलना, हंसी-मजाक करना, दान लेना, रतिक्रिया, दूसरे तीर्थ के प्रति अनुराग व्यक्त करना, उसकी महिमा गाना, कपड़े धोना-छोड़ना – जल पीटना तैरना – सामान्यतः वर्जित है - गंगादि तीर्थों में विशेषत: ।

तीर्थ यात्रा का फल

श्रद्धारहित, तीर्थ में पाप करने वाले, नास्तिक, संशयात्मा तथा कुतर्की को तीर्थ यात्रा का फल नहीं मिलता। तीर्थ यात्रा का फल यात्री को श्रद्धानुसार मिलता है ।

मन्त्रे, तीर्थे, द्विजे, देवे, दैवज्ञ, भेषजे, गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

तीर्थों से सब सुलभ है किन्तु बुद्धिमान् पुरुष को मात्र भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये वही मनुष्य का एकमात्र प्राप्तव्य है। केवल भगवत्प्राप्ति के लिये तीर्थ यात्रा सात्त्विक तीर्थ यात्रा है, धर्म संग्रहार्थ तीर्थयात्रा सात्त्विक एवं राजसी तीर्थयात्रा है । केवल इह लौकिक एव पारलोकिक कामनाओं की सिद्धि के लिये तीर्थयात्रा राजसी तीर्थयात्रा है। यह आप पर निर्भर है कि आप कौनसी तीर्थयात्रा करना चाहते हैं ।

तीर्थयात्री को आसक्ति, कामना, ममता, अहंकार, दम्भ, गर्व, लोभ, वैर छोड़ना चाहिये तथा भगवत्प्रेम एवं भगवदानुरागी जनों से संगति करनी चाहिये ।

पर, यह नहीं भूलना चाहिये कि भौम तीर्थों का इतना अधिक महत्त्व एवं प्रभाव होने पर भी मातृ तीर्थ, पितृ तीर्थ, गुरु तीर्थ एवं भार्या तीर्थ एवं भर्तृ तीर्थ का परित्याग श्रेयस्कर नहीं है । अर्थात् पुत्र के लिये माता एवं

पिता, शिष्य के लिये गुरु एवं पति के लिये पत्नी तथा पत्नी के लिये पति को तीर्थ माना गया है। गंगादि भौम तीर्थों की यात्रा के लिये यदि उनकी सेवा में व्यवधान होता हो या इन्हें कष्ट होता हो तो इनकी सेवा सुविधा छोड़कर जो गंगा स्नानादि का पुण्य पाना चाहते हों, तो पुण्य नहीं पाप हो होगा। पद्म पुराण में कहा गया है कि तीर्थ यात्रा का उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। तीर्थों में साधु सन्त मिलते हैं। भगवत् - ज्ञान काम - लोभवर्जित साधुसंग से होता हैं- इनके उपदेश से संसार बन्धन का नाश होता है अतः जो संसार बन्धन से छुटना चाहते हैं उन्हें उन पवित्र जलवाले तीर्थों में जहां साधु महात्मा रहते हैं अवश्य जाना चाहिये। जय तीर्थों की - जय तीर्थीभूत महात्माओं की और जय तीर्थ भूमि भारत और शेखावाटी की।

तीर्थ यात्रा प्रयोजनम्

तीर्थेपु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः।
यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः॥
तस्मात् तीर्थेपु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।
पुण्योदकेपु सततं साधुश्रेणिविराजिपु॥

तीर्थयात्रा भगवद्भक्तों को अवश्य करनी चाहिये क्योंकि अहर्निश भगवान् के ध्यान में परायण साधु सन्त तीर्थों में अनायास दृष्टिगोचर हो जाते हैं जिनके दर्शन पापों को जला देने में अग्नि का काम करते हैं इसलिये जो लोग संसार से डरे हुये हैं तथा संसार - बन्धन से छूटना चाहते हैं उनको पवित्र जलवाले तीर्थों में जो सदा साधुसंग से सुवासित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये — भवानीशंकर शास्त्री

तीर्थयात्रा की शास्त्रीय विधि

विराजं जनयेत् पूर्वं कलत्रादिकुटुम्बके ।
असत्यभूतं तज्ज्ञात्वा, मनसा तु हरिं स्मरेत् ।।
कोशमात्रं ततो गत्वा रामरामेति च ब्रुवन् ।
तत्र तीर्थादिषु स्नात्वा, क्षौरं कुर्यात् विधानवित् ।।
मनुष्याणां च पापानि तीर्थानि प्रति गच्छयाम् ।
केशमाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् तद्वपनं चरेत् ।।
ततो दण्डं तु निर्ग्रन्थि कमण्डलुमथाऽजिनम् ।
विभृयाल्लोभनिर्मुक्तस्तीर्थवेषधरो नरः ।।
विधिना गच्छतां नृणां कलावाप्तिर्विशेषतः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तीर्थयात्राविधिं चरेत् ।।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।
हरेकृष्ण हरेकृष्ण भक्तवत्सल गोपते ! ।
शरण्य भगवन् विष्णो मां पाहिब हुसंसृतेः ।।
इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरिं स्मरन् ।
पादचारी गतिं कुर्यात् तीर्थं प्रति महोदयः ।।

तीर्थयात्रा का इच्छुक सर्वप्रथम पुत्र कलत्रादि की चिन्ता त्याग कर निश्चिन्त मन से भगवान् का स्मरण करे। घर से कोस दो कोस जाने के बाद वहां नदी, तालाब, कुए, आदि पर क्षौर (मुण्डन करवा कर स्नान कर ले। तीर्थों पर जाने वाले यात्रियों के पाप उनके केशों पर आकर ठहर जाते हैं अत: उनका मुण्डन करा देना चाहिये। तदन्तर दंड, कमंडलु, आसनादि आवश्यक सामग्री लेकर ईर्ष्या द्वेष मानमत्सरादि का मन से त्याग कर जीभ से इष्टदेव का नाम रटते हुये और हृदय में भगवान् का ध्यान करते हुये पैदल ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये। इस विधि से की हुई तीर्थयात्रा महान् अभ्युदय को प्राप्ति करानेवाली होती है। — पद्मपुराण (पातालखंड से)

मरुधरा, जहाँ कभी समुद्र था

- देवदत्त शास्त्री

ऋग्वेद १।७।१७) की एक ऋचा इस तथ्य का उद्‌घाटन करती है कि उस समय आर्य जहाँ निवास करते थे; वहाँ समुद्र था, जिसमें सिन्धु, वितस्ता, असिक्नी, मरुद्‌वृधा, विपाशा, शतद्रु और सरस्वती–ये सात नदियाँ गिरती थीं। इतिहासकारों, पुरातत्त्वविदों ने इस स्थिति का काल-निर्धारण पच्चीस हजार वर्ष पूर्व करते हुए यह मत व्यक्त किया है, कि आजकल जहाँ राजस्थान है वहाँ पहले समुद्र था और सरस्वती नदी उसी समुद्र में गिरती थी। उस समय आज की सबसे बड़ी नदियाँ गंगा और यमुना बहुत छोटी थी। उत्खनन में मारवाड़ के पश्चिमी भाग में अर्धपाषाण रूप में परिवर्तित जो शंख और सीप मिले हैं, उनसे भी ऋग्वेद और पुरातत्त्वविदों की धारणा की पुष्टि होती है। मारवाड़ क्षेत्र की वर्तमान साभर झील भी उस समुद्र के अवशिष्ट अंश का एक प्रबल साक्ष्य है।

वाल्मीकीय रामायण (युद्ध कांड, सर्ग २२) से यह प्रमाणित है कि उस समय दक्षिणी समुद्र से उत्तर 'द्रुमकुल्य' नामक कासार पानी का एक समुद्रीय अवशिष्ट अंश था जो श्री राम द्वारा आग्नेय अस्त्र फेंके जाने के कारण सूख गया। जहाँ वह बाण गिरा वहाँ एक गह्वर बन गया और उससे पानी निकल आया। पुरातत्त्वविदों ने इस स्थान की पहचान वर्तमान मारवाड़ के 'बीलाड़ा' नामक गाँव से की है और उस कुंड को वर्तमान बाणगंगा के नाम से पहचाना है। महाभारत से प्रमाणित है कि उक्त स्थान पर बाद में दस्यु और आभीर जातियाँ बस गईं।

शतपथ ब्राह्मण में (१।६।३।११) त्वष्ट्रा और इन्द्र के सोमपान सम्बन्धी संघर्ष के प्रतीक-कथन द्वारा चन्द्रग्रह के विशेष स्थान परिवर्तन की ओर सकेत किया गया है। इस प्रसंग में बताया गया है कि सोम (चन्द्र) ने बाण की गति

पर्यन्त तिर्यक्देह वृद्धि द्वारा अपर एवं पूर्व समुद्र को पीछे ढकेल दिया। समुद्र के सूख जाने से अथवा पीछे खिसक जाने से सरस्वती नदी भी सूख गई या लुप्त हो गई । ऋग्वेद में सरस्वती नदी के लुप्त होने को 'विनशनात् पूर्वं' बताया गया है । यह विनशन' वर्तमान बीकानेर से पहचाना जा सकता है। ताण्ड्य ब्राह्मण (२५।१०।१६) में उल्लेख मिलता है कि 'विनशन' में लुप्त सरस्वती नदी मरुभूमि में ही एक स्थान पर पुनः उदित हुई जो 'प्लक्ष-प्रस्रवण' नाम से ख्यात है । यह स्थान 'विनशन' से अश्वगति से चौवालीस दिनों की दूरी पर स्थित था । जैमिनीय ब्राह्मण (४।१६।१२) तथा मनुस्मृति (२।२१) में यमुना और सतलुज के मध्य प्रवाहित होने वाली सरस्वती नदी के विनशन मे लुप्त होने का उल्लेख मिलता है । पुरातत्त्वविदों ने अनुमान किया है कि शतद्रु (सतलुज) की एक धारा किसी समय मारवाड़ में बहती थी, जिसे लोग 'हाकड़ा'-नाम से पुकारते थे । कालान्तर में वहाँ की ज़मीन ऊँची हो जाने से नदी की धारा बदलकर मुलतान की तरफ मुड़ गई और सिन्धु में जाकर मिल गई । इस समय भी मारवाड में 'हाकड़ा' नाम का क्षेत्र विद्यमान है। 'वह पानी मुलतान गया' यह मुहावरा अब भी मारवाड के लोगों में प्रचलित है । पंजाब के पटियाला क्षेत्र में इस समय भी 'सरसुति' नाम की एक छोटी नदी की अवस्थिति प्रमाणित है ।

कर्नल टाड ने अपने इतिहास में राजस्थान की भौगोलिक सीमा का निर्धारण करते हुए बताया है कि 'राजस्थान के पूर्व बुन्देलखण्ड पश्चिम में सिन्धु नदी की घाटी, उत्तर में 'जांगल देश' नामक मरुस्थल और दक्षिण में विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियां है । महाभारत में जाना जाता है कि उस समय वर्तमान मारवाड़ क्षेत्र का उत्तरी भाग और बीकानेर का पूरा क्षेत्र 'जांगल देश' कहलाता था और उस 'जांगल देश' की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी । वर्तमान काल का नागौर अहिच्छत्रपुर था । महाभारत उद्योगपर्व अ० ५४ श्लोक ७) से ही प्रमाणित है कि उस समय नागौर कौरवों के शासन के अन्तर्गत था । महाभारतकाल से पूर्व ही मारवाड़ का दक्षिणी भाग 'मरु' और 'धन्व' नाम से बसा हुआ विख्यात था । श्रीमद्भागवत (स्कन्ध १, अ० १०

श्लो० ३५) से विदित है कि जरासन्ध के बार-बार आक्रमण से त्रस्त होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने यदुओं को द्वारकापुरी में बसा दिया था। द्वारकापुरी जाते हुए यदु लोगों ने 'मरु' और 'धन्व' नाम के दो प्रदेशों को पार किया था। भूगोलवेत्ताओं ने 'धन्व' क्षेत्र की पहचान 'मारवाड़' से की है।

महाभारत (सभापर्व, अध्याय ३२) से ज्ञात है कि प्राचीनकाल में राजस्थान में मालव, शिवि और त्रिगर्तों के गणतंत्र राज्य थे। पाण्डवों के दिग्विजय प्रसंग में दशार्णों और माध्यमिकियों के साथ मालव, शिवि और त्रिगर्तों का नामोल्लेख हुआ है। 'माध्यमिका नगरी' का उल्लेख महर्षि पतञ्जलि ने अपने वैयाकरण महाभाष्य में भी किया है। यह नगरी वर्तमान मेवाड़ क्षेत्र में चित्तौड़ से आठ मील पर स्थित है। यहाँ उत्खनन से सिक्के भी मिले हैं। महाभारत में उक्त गणराज्यों के उल्लेख के साथ मत्स्यप्रदेश और सरस्वती नदी का भी उल्लेख आया है। अलवर और जयपुर की पुरानी रियासतों का कुछ भाग मत्स्य प्रदेश के नाम से ख्यात रहा है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने (हिन्दू पालिटी पृष्ठ १५४) में बताया है कि महाभारत में उल्लिखित 'उत्सव संकेत' गणराज्य की स्थिति पुष्कर (अजमेर) क्षेत्र में थी। डा० दिवेकर ने अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है, कि ऋषि विश्वामित्र ने वेद के गायत्री छन्द की रचना पुष्कर में की थी। धर्मशास्त्रों का कहना है कि 'जिस क्षेत्र में शमी के वृक्ष और कृष्णसागर मृगों का बाहुल्य हो, वह क्षेत्र यज्ञ करने योग्य होता है।' राजस्थान इस दृष्टि से यजन-याजन की भूमि माना जाता रहा है। उपनिषद् काल और स्मृति काल में राजस्थान 'ब्रह्मर्षि देश' कहलाता था। विश्वामित्र ने यहीं तपस्या करके ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया था। गायत्री छन्द का साक्षात्कार उन्होंने राजस्थान में ही किया था, इसलिए उनकी तपःसाधना और अलभ्य ब्रह्मर्षि पद की स्मृति में यह प्रदेश ब्रह्मर्षिदेश के नाम से अभिहित किया गया था। आगे चलकर, मनु ने सम्पूर्ण भारत को ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, मध्यदेश और आर्यावर्त इन चार भागों में विभक्त किया। मनु के अनुसार भी ब्रह्मर्षि देश राजस्थान ठहरता है। कौषीतकि उपनिषद् (३।१) भी इसका समर्थन करती है।

महाभारत मत्स्यदेश की राजधानी विराटनगर बतलाता है। यह

विराट् नगर वर्तमान जयपुर नगर से इकतालीस मील उत्तर 'वैराठ' नाम से अब भी स्थित है। चीनी यात्री हु-एनसांग ने मथुरा से पश्चिमी ५०० ली (८३ मील) और शे-टो-टु-लो (सतलुज) से दक्षिण-पश्चिम की ओर ८०० ली पर जिस 'पो-लि-ये-टो-लो' राजधानी का उल्लेख अपनी डायरी में किया है. उस 'पोलियोटोलो' का समीकरण एम० रेनाड ने 'पारियात्र' या बैराठ' से किया है। बैराठ में जो पर्वत है, उसका प्राचीन नाम पारियात्र रहा है। इस पर्वत का परिगणन सप्तकुल पर्वतों में किया गया है। पारियात्र पर्वत के नाम से इस क्षेत्र को पारियात्र-प्रदेश भी कहा जाता था, जैसे विन्ध्य पर्वत मालाओं के मध्य क्षेत्र को विन्ध्यक्षेत्र कहा जाता रहा है। पारियात्र पर्वत विन्ध्य पर्वत का वह पश्चिमी भाग है जो अरावली पर्वत के नाम से ख्यात है। इस समय बैराठ में अरावली पर्वतमाला विद्यमान है।

राजधानी वीरों के शौर्य का लोहा मनु ने भी स्वीकार करते हुए अपनी स्मृति में यह व्यवस्था दी कि 'सेना का अग्रिम-दस्ता' मत्स्य कुरुक्षेत्र, पांचाल और शूरसेन के वीरों द्वारा निर्मित होना चाहिए। (मनु० ७।१९३)

इतिहास और पुरातत्त्व की सामग्री से समृद्ध बना हुआ बैराट अपना इतिहास स्वयं बताता है। वहाँ से एक मील उत्तर लम्बी चट्टान वाली पहाड़ी पर भीम (पाण्डव) का निवास स्थान होने की अनुश्रुति है। उत्खनन में यहाँ आठ बौद्ध मठों के अवशेष और एक अशोक स्तम्भ भी मिला है। बौद्ध ग्रन्थों और इतिहास ग्रन्थों में सोलह महाजनपदों में मत्स्य एक जन पद माना गया है और विराट् उसकी राजधानी। यहीं पर पाण्डवों ने अज्ञातवास किया था।

× × ×

कर्नल टाड ने अपने इतिहास में लिखा है, कि किसी समय मरु प्रदेश (मारवाड़) का विस्तार पश्चिमी समुद्र से सतलुज तक माना जाता रहा है। अबुलफजल ने मारवाड़ की लम्बाई १०० कोस और चौड़ाई ६० कोस लिखी है और अजमेर, जोधपुर, नागौर, सिरोही तथा बीकानेर को मारवाड़ देश के अन्दर स्वीकार किया है। ❁ — (सोमानी - संदर्भ)

लोहार्गल तीर्थ

हनुमत्प्रसाद शास्त्री

> लोहार्गलस्य गगाया: बदर्याश्रमस्य च ।
> न भेदो हि मया दृष्टो नाऽसत्य वच्मि शौनक !

श्री लोहार्गल की गगा और बदरिकाश्रम की गंगा में मुझे कोई भेद प्रतीत नहीं होता है, शौनक ! मैं असत्य नहीं कहता।

उपरोक्त श्लोक में जिस तीर्थराज की स्तुति है वह राजस्थान प्रान्त का लोहार्गल तीर्थ भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में एक है। इस तीर्थ स्थान पर अनेक ऋषि-महर्षियों ने समय-समय पर कठोर तपश्चर्या कर अपने लोकोत्तर प्रभाव का परिचय दिया है। वस्तुत: यह एक ऋषि भूमि है। लोहागल शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए व्यास जी के वचन हैं – "लोहस्य अर्गलेव स्यात् पापानां सन्निरोधकम्, यत्तत् लोहार्गलं नाम तीर्थ गुह्यतमं भुवि।" लोहे की अर्गला की भाँति यह तीर्थ हृदय में पाप–पुंज नहीं घुसने देता अतएव इस गुप्त तीर्थ को लोहार्गल कहते हैं। लोहार्गल का मुख्य तीर्थ स्थल पर्वत श्रेणियों से समाच्छादित होने के कारण गुह्यतम शब्द भी सार्थक प्रतीत होता है। हेमाद्रि संकल्प में भी चतुर्दश गुप्त तीर्थों में इस तीर्थ का उल्लेख पाया जाता है।

जिस प्रकार लोहार्गल का धार्मिक महत्त्व अधिक है उसी प्रकार इसका प्राकृतिक सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। यह क्षेत्र सजलसघन वनों से सुशोभित है। पार्वत्य भूमि की रमणीयता चित्ताकर्षक है। ऊँची–ऊँची पर्वत श्रेणियां हरियाली से ढकी होने के कारण दर्शकों की आँखों का वरवश मुग्ध किये बिना नहीं रहती। लोहार्गल तीर्थ का वर्णन जिन-जिस धर्म ग्रन्थो मे मिलता है उनमें स्कन्द तथा वाराह पुराण का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। स्कन्द-पुराण के रेवाखण्ड में परशुरामकृत विष्णु यज्ञ के ये श्लोक स्पष्टतया लोहर्गल की ओर संकेत करते है–

> रामोऽपि सकलं तस्मै वर्णयामास यत्कृतम् ।
> मालावन्तं जगामाऽऽशु लोहार्गलसमन्वितम् ॥

पापादिपत्तविशुद्ध्यर्थं वैष्णवं मखमारभत् ।
इन्द्रादयाः सुराः सर्वे ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥

महर्षि परशुरामजी ने अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये इसी पुण्य क्षेत्र में वैष्णवयाग किया था । इस यज्ञ में इन्द्रादि देवता एवं वशिष्ठादि ऋषि मुनि सभी सहर्ष आये और तीर्थ की रमणीयता देख कर मुग्ध हो गये । अतः यज्ञ समाप्ति के अनन्तर भी माल क्षेत्र पर्वत के शिखरों पर चिरकाल तक तप करते रहे ।

आदि वाराह पुराण में श्री लोहार्गल का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

वाराह उवाच-

शृणु देवि ! च तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
गुह्यमन्यच्च वक्ष्यामि महतः कर्मणो गतिः ॥
ततः सिद्ध वटे गत्वा त्रिंशद्योजनदूरतः ।
म्लेच्छमध्ये वरारोहे ! अर्बुदाचलमाश्रितम् ॥
तत्र लोहार्गलं नाम निवासो मे विधीयते ।
गुहा पंचदशा तत्र समन्तात् पंचयोजनम् ॥
सुलभं पुण्ययुक्तानां मम कर्मानुसारिणाम् ।
तत्र तिष्ठाम्यहं भद्रे उदीची दिशमास्थितिः ॥
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च स्कन्देन्द्रश्च मरुद्गणाः ।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसः ॥
सोमो बृहस्पतिश्चैव ये चाऽन्ये च दिवौकसः ।
तेषां चैवार्गलं दत्वा चक्रं गुह्य महौजसम् ॥

श्री आदि वाराह भगवान् कहते हैं हे देवि ! जो तू मुझे गुप्त तीर्थ के विषय में पूछती है सो ध्यान से सुन—

सिद्धवट के समीप म्लेच्छों की बस्ती के बीच में लोहार्गल नाम का मेरा निवास स्थान है जो अर्बुदाचल के शिखरों से चारों ओर समाच्छादित है ।

इस तीर्थ में पन्द्रह गुप्त तीर्थ हैं इसका विस्तार पांच योजन अर्थात् बीस कोश है। यह तीर्थ मेरे पुण्यात्मा भक्तों के लिए सुलभ है। यहां उत्तर दिशा में मेरा निवास है। ब्रह्मा, स्कन्द, रुद्र, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मरुद्गण, आदित्य चन्द्रमा, बृहस्पति आदि समस्त देवताओं का यहां निवास है। मैं इस क्षेत्र की चक्र लिए रक्षा करता हूं। मेरे इस नित्य आवास पर जब-जब दानव आक्रमण करते हैं तब-तब ही मैं वैष्णवी माया के प्रभाव से उनको शीघ्र परास्त कर देता हूं। लोहे की अर्गला (आगल) की तरह पर्वत श्रेणी इस तीर्थ को रोके हुए है, गुप्त किए हुए है। अतः इसका नाम लोहार्गल है। एक धारा यहां पर लाल रंग के जल की गिरती है उसमें जो सात रात्रि निवास कर प्रतिदिन स्नान करता है वह ब्रह्मलोक को अनायास ही प्राप्त कर लेता है। जो भक्त अहंकार छोड़ कर यहां प्राण त्यागता है वह मेरे लोक को प्राप्त होता है। सिद्धि का कामना वाले मनुष्यों को इस तीर्थ में तप करने से अवश्य सिद्धि प्राप्ति होती है। हे देवि! यह लोहार्गल माहात्म्य मैंने तुमको सुनाया इसमें पांच अत्यन्त गुप्त पवित्र तीर्थ हैं जो भक्तों को सुख देने वाले एवं कल्याणकारी हैं।

जब आप लोहार्गल यात्रा के लिए पर्वत श्रेणियों से वेष्टित प्रवेश द्वार पर पहुंचेंगे तो चेतनदासजी की महती बावड़ी और श्री राधारमण का विशाल मन्दिर आपकी दृष्टि को आकृष्ट किये बिना न रहेंगे। स्वनामधन्य महात्मा चेतनदासजी ने ऐसे स्थान पर यह विशाल जल भंडार बना कर वस्तुतः समस्त तीर्थ के सार को एक स्थान पर स्थापित कर दिया है। महात्माजी बड़े पहुंचे हुए साधु थे। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार आप बड़े उच्च स्वर से चेतन की जय बोल दिया करते थे। दिन में रात में जब भी अन्तः प्ररणा होती। भ्रमण करते समय आप लखनऊ जा पहुंचे और वहां भी चेतन की जय की ललकार लगाई तो तत्कालीन नवाब ने आपको अंधकार पूर्ण कोठरी में बन्द करवा दिया किन्तु नवाब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि महात्मा तो महल की छत पर चेतन की जय बोल रहा है। सुनते है नवाब ने उस चमत्कार से प्रभावित हो आप को बहुत सा धन दिया जिसका सदुपयोग इस बावड़ी और मन्दिर में किया गया।

प्रातः लोहार्गल यात्रा पर आने वाले भक्त, "मालकेत बनखंडी की जय" बोलते हैं। यह इस पर्वत का उच्चतम शिखर है जो अन्यान्य शिखरों से पृथक् है और प्रवेश द्वार पर से ही जिसका मनोहर रूप दृष्टिगोचर होता है। इसके विषय में यहां एक कथा प्रचलित है कि बनखण्डी नाम के शैव साधु चेतनदास-जी के आगमन से पहिले ही यहां निवास करते थे जो भैरवभक्त कापालिक सिद्धिप्राप्त सन्त थे। महात्मा चेतनदासजी ने जब बावड़ी खुदवाना प्रारम्भ किया तो इनसे सम्मति नहीं ली। जिसका फल यह हुआ दिन में जितनी खुदाई होता रात में उतनी ही मिट्टी वापिस गड्ढे में भर जाती। कई दिन तक यह संघर्ष चलता रहा। चेतनदासजी अधिकाधिक मजदूर लगा देते किन्तु रात को किया कराया सब बराबर। अन्ततः चेतनदासजी ने ही सन्त से पूछा, महात्मा-जी आप क्या चाहते हो? बनखण्डी जी ने भी हंसकर यही प्रश्न किया आप क्या चाहते हो? तब चेतनदासजी ने कहा मैं तो मेरा नाम चाहता हूं तो उनने भी यही उत्तर दिया कि मैं भी मेरा नाम चाहता हूं, बस समझौता हो गया। महात्मा चेतनदासजी ने इस शिखर पर यह छतरी बनखण्डी नाम से बनवादी और सन्त का नाम अमर कर दिया। प्रस्तुत शिखर पर प्रकृति के दर्शन के शौकीन चढ़ते हैं और दूर के दृश्यों को देख आनन्दलाभ करते हैं। लोहार्गल यात्रियों के लिये यह प्रधान द्रष्टव्य स्थानों में से एक है। पहिले तो यहां का मार्ग दुर्गम और भयावह था ऊपर भी कोई सुविधापूर्ण स्थान नहीं था परन्तु अब स्वनामधन्य सेठ श्री मनसुखराय जी मोर ने रास्ते में सीढ़ियां बनवादी तथा मार्ग में एक जलाशय भी बनवा दिया जिसमें वर्षा का जल पर्याप्त मात्रा में एकत्रित रहता है और ऊपर एक रसोई घर तथा रहने के लिये कमरा बनवा दिया जिससे भजन स्मरण करने वाले एकान्तप्रेमी साधु-सन्त यदि वहां निवास करें तो असुविधा न हो इस प्रकार दुर्गम को सुगम बनाकर श्री मोर जी ने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है।

ज्ञानवापी

लोहार्गल महात्म्य में है। जलाशय के ऊपर जो वटवृक्ष है यह भी अत्यन्त प्राचीन है इतना ऊंचा वटवृक्ष शायद ही कहीं देखने में आया हो। इस स्थान पर दो तीन गुफा हैं जो दर्शनीय हैं यहां अनेक तपस्वी सिद्ध महात्मा हुये हैं।

चार सम्प्रदाय खाखीजी का मन्दिर

यह मन्दिर वैष्णव सम्प्रदाय का सर्वमान्य सर्वोच्च मन्दिर है। यहां के महन्त की आज्ञा मात्र वैष्णव साधुओं के शिरोधाय होती है। देश के भिन्न-२ भागों से तीर्थ यात्रा प्रेमी साधु इसी मन्दिर में आकर टिकते हैं यहां खाखीजी श्री जनार्दनदासजी अच्छे प्रख्यात महात्मा हुए है, जिनके चमत्कार पूर्ण कर्मों की चर्चा आज भी जन-जन के मुंह पर आती है। सैंकड़ों साधु महीनों तक जमे रहते और नित्य नये पकवान भगवान् नृसिंह के भोग लगते और कोई भी भोजनार्थी इस मन्दिर से विमुख नही लौटता था। खाखीजी महाराज लक्ष्मी नृसिंह के अनन्य भक्त थे। श्री विग्रह के सम्मुख हो बैठे २ आपका रात दिन बीतता था। आज भी इस मन्दिर की पूजा अर्चा अतिथि सत्कार अन्य मन्दिरों के लिए आदर्श रूप है।

मालखेत मालकेतु (मालाकेतु)

लोहार्गल यात्रियों के लिये मालखेत बनखंडी ये दो स्थान विशेप आकर्पण की जगह है किन्तु बनखंडी तो अपनी ऊंचाई के कारण सर्व साधारण के अगम्य है और मालकेतु पर प्रायः सभी यात्री पहुंचते हैं। इस मन्दिर के निर्माता महात्मा सेवानन्द जी हुए है जो लशकरी संप्रदाय के साधु थे। आपने ही अमित धन व्यय करके यहां एक श्री रघुनाथ जी का विशाल मन्दिर और यह मालकेतु का मन्दिर बनवाया। मालकेतु मन्दिर के प्रवेश द्वार पर आपको एक इमली का पेड़ दिखाई देगा। इसकी प्रत्येक छोटी शाखाओं पर राखी सी बन्धी रहती है। ये क्या है ? ये उन यात्रियों के प्रतिज्ञासूत्र हैं जो अपनी मनोकामना मालकेतु जी को निवेदन कर पुनः सेवा में उपस्थित होने की प्रतिज्ञा करते हैं। प्रति वर्ष शाखाओं मे अवलबित ये राखियां ही इस मन्दिर के चमत्कार का प्रतीक हैं।

अधिक यथा मालखेत के नाम से प्रेषित कई लिफाफे इन पंक्तियों के लेखक ने भी प्रत्यक्ष किये हैं जिनमें मनोरथ पूर्ति के लिए कृतज्ञता प्रकट की गई और मनौती की स्वीकृत भेंट भेजी गई है। प्रेषक का नाम नहीं। इस मन्दिर में तीन प्रधान देवता हैं, शिव, विष्णु और शेषावतार लक्ष्मण। इस स्थान के चमत्कार में महात्मा श्री सेवानन्द जी की सर्व-लोकहितैषिणी तपस्या का प्रभाव प्रतिबिम्बित होता है।

वाराह मन्दिर

इस तीर्थ का सबसे पुरातन मन्दिर यही है इसके दर्शन से ही प्राचीनता स्वतः प्रमाणित होती है मन्दिर के सम्मुख वाराह कुण्ड है। वाराह पुराण में वर्णित लाल धारा की संगति इसी कुण्ड के विषय में चरितार्थ होती है क्योंकि इस दिशा में जो जल प्रपात पर्वत से गिरता है वह रक्त वर्ण ही है। "एकधारा पतत्यत्र इन्द्रगोपकसन्निभा" का लक्ष्य यही वाराह कुण्ड है किन्तु अनभिज्ञता के कारण विरले ही तीर्थ प्रेमी इसमें पहुंच पाते है।

सूर्य मन्दिर : सूर्य कुण्ड

यह लोहार्गल मन्दिरमय है। इसमें सभी संप्रदायों के सभी जातियों के (हरिजनों तक के) पृथक् २ मन्दिर पाये जाते है ऐसा मंदिर का संगठन विरले ही तीर्थ स्थानों मे देखा जाता है। यहां किसी भी मनुष्य का प्रवेश निषिद्ध नही। अन्यान्य तीर्थ स्थानों पर कानून के बल पर जिस कार्य को प्रचलित किया जाता है वह मानव मात्र का समान भाव इस तीर्थ पर प्राचीन काल से स्वतः सिद्ध है। ऐसे ही पतित पावन तीर्थों में यहां का प्रसिद्ध तीर्थ सूर्य कुण्ड है इसमें सदा नाभि तक जल रहता है अधिक जल कुण्ड से निकल कर एक मील तक के बाग बगीचो को हरे भरे बनाये रहता है। भीम की गदा गलाने वाले इस जल में अब भी अस्थियों को गला देने की शक्ति है कभी २ इसमें दूध सा जल देखा गया है तीर्थवासी साधु सन्त इसको दूध की गंगा बताया करते । विचित्रता अधिक यह है कि जिस दिन सूर्य कुण्ड का जल श्वेत होता है

उसी दिन शाकंभरी और किरोड़ी का जल भी दुग्ध वर्ण हो जाता है। इससे एक ही ब्रह्म ह्रद को मालकेतु से आच्छादित करने से तीन कुण्ड और पांच पवित्र नदियों की उत्पत्ति जो लोहार्गल माहात्म्य में "प्रच्छाद्यमाने तीर्थे तु गिरीणां सर्वतो दिशम् प्रादुरासन् अथ कुण्डास्तत: शुद्धोदका यथा। तथैव पञ्चधा जाता नद्य: सर्वमलापहा:" वर्णित अधिक स्पष्ट होती है।

यह स्थान रघुनाथगढ़ की दिशा में मालकेतु मन्दिर से पश्चिम की ओर एक बीहड़ नाले में है लोहार्गल में समस्त स्थानों की अपेक्षा यह स्थान अधिक हरा भरा रहता है। स्थानीय वृद्ध इस नाले में गुप्त साधुओं के रहने पर विश्वास करते हैं। इस सम्बन्ध में दो सच्ची घटना यहां पर प्रचलित है- "एक समय कोई बकरी चराने वाला गूजर झुंड से पिछड़ी हुई अपनी बकरी की खोज में घूम रहा था, इतने में एक सन्त उसको दिखाई दिये और साथ ही बकरी भी एक तरफ चरती दिखाई दी। गूजर ने नमस्कार प्रणाम की और सेवा के लिये निवेदन किया तो सन्त ने सरल भाव से हंस कर कहा बच्चा! दूध चाहिये। गूजर ने कहा उस बकरी के तो दूध नहीं है। किन्तु साधु ने आग्रहपूर्वक अपनी तुम्बी उस गूजर की ओर बढ़ाते हुए कहा निकालो तो सही। गूजर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि बकरी के स्तन दूध भरे हैं और झट से उसने तुम्बी भर दूध निकाल दिया। गूजर का नाम रामू था, रामू उस दिन से वहीं बाबा की सेवा में रहने लगा। बाबा गुफा में और रामू बाहर रहता। महीनों बाद एक दिन घर वालों ने ढूंढ़ते २ उनको देख लिया तब सब बातें रामू ने बताई और कह दिया कि मैं अब घर नहीं जाऊंगा। किन्तु सायंकाल जब वह बाबा की सेवा में गया तो न गुफा थी और न बाबा। रामू निराश हो घर लौट आया। दूसरी कहानी वाराह मन्दिर के महन्त स्वामी डूंगजी की है। डूंगजी इसी नाले में घास काट रहे थे। जेठ का महीना, कड़ाके की धूप, प्यास के मारे डूंगजी मूर्छित से होकर पड रहे। कुछ क्षण बाद कानों ने सुना, क्यों पड़ा है? तेरे सामने ही तो पानी है। स्वामी जी ने आंखें खोली स्वर मनुष्य का था किन्तु कोई दिखाई नही दिया। सामने देखा, एक घास की जड़ में कुछ मधुमक्खियां मंडरा रही थी। सोचा यहीं जल हो तो हो-घास उखाड़ते ही जल की धार बह चली। परम्परा से यह सुना जाता है कि यहां वशिष्ठजी ने तपस्या की थी।

सुप्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ-श्री कोलायतजी (बीकानेर)

- मालचन्द खड़गावत

बीकानेर से पश्चिम में पच्चास किलोमीटर की दूरी पर स्थित आज का सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थल कोलायत किसी युग का कपिलायतन था। सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिलमुनि की प्रयोग स्थली और साधना स्थली। जहां मुनि कपिल ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण भौतिक प्रयोग करके तत्वों की संख्या निर्धारित की थी। जिसके कारण वे अपने समकालीन ऋषि मुनियों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर गये।

कोलायत के आस-पास की धरती अपनी विशेषताओं को आज भी अपने में समेटे हुए है। धरती की ऊपरी पर्त पर नजर डालते ही नवागन्तुक को ऐसा लगता है जैसे वह किसी तपो भूमि और भौतिक प्रयोगों से दग्ध क्षेत्र में आ पहुंचा है। ऊपरी पर्त की बनावट, उस पर मिलने वाले कंकड़ पत्थरों के रंग रूप पर अपने आप में एक मौलिकता और विशेषता लिये हुए होते है।

यही नही पीने के पानी के लिये इस क्षेत्र में दूर-दूर तक में जो कुवे खोदे जाते हैं उस खुदाई में मिट्टी की अलग-अलग रंग रूप की पर्ते देखने में आती है इस लेख के लेखक को इस सम्बन्ध में स्वय मे प्रत्यक्ष देखने को मिला है कि एक कुवे की खुदाई में दो दर्जन से अधिक रंग रूप वाली पर्ते निकली थी। हो सकता है कपिल और उनके शिष्यो ने उस युग में परमाणु प्रयोग किये हों जिससे इस धरती में कुछ मौलिकतायें पैदा हो गई।

प्राचीन ऋषि मुनि अपने विषयों के प्रकाण्ड विद्वान, वैज्ञानिक और महान् चिन्तक होते थे। उनका कार्य क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता था। कपिल मुनि के बारे में भी एक महत्वपूर्ण जनश्रुति यह है कि एक बार जब वे आज के गंगासागर द्वीप (बंगाल की खाड़ी) में ध्यान मग्न थे तो वहां राजा सगर के एक सौ पुत्र अपने अश्वमेध घोड़े के साथ वहां पहुंच गये और गलत फहमी के शिकार होकर मुनि से लड़ने को आमादा हो गये। मुनि का जब ध्यान टूटा तो उन लोगो के आक्रमण रवैये को देखकर उन्हें भारी आश्चर्य हुआ।

मुनि ने युद्धोन्मत राजकुमारों को गलत फहमी को मिटाने का प्रयास किया पर सत्ता के नशे में अन्धे राजकुमार भला कब मानने वाले थे। वे नहीं माने तो मुनि ने अपनी शक्ति से सबको वहीं का वही एक साथ भस्म कर डाला।

राजा सगर इस कारण घटना से एक दम टूट कर मुनि के चरणों में जा पहुंचे और उन राजकुमारों को पुनः जिन्दा करने की अनुनय विनय की, पर मुनि ने इसमें अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। पर राजा के यह पूछने पर कि इन मृतात्माओं की गति कैसे होगी तो बता दिया कि तुम्हारे कुल में से जो गगा को इधर ले आयेगा तो इनकी गंगा जल से मुक्ति हो जायेगी। गंगा को उस स्थान तक ले जाने का कार्य राजा सागर के वंशज भागीरथ ने किया तब से उस स्थान का नाम गंगासागर पड गया।

गगासागर आज भी समूचे देश के हिन्दु मतावलम्बियों के महान् आकर्षण का केन्द्र है। आम कहावत है "और तीर्थ बार-बार गंगासागर एक बार"। आम धर्मावलम्बि और तीर्थों पर चाहे बार-बार हो आवें पर अपने जीवनकाल में एक बार गगासागर जाकर उसके पानी में स्नान करने की अमिट इच्छा रखता है।

कोलायत का तालाब भी अपने में चाहे वर्षा का पानी समेटे रहता है, पर धर्म प्राण लोगों में उस जल में डुबकी लगाने की ललक कम नहीं रहती है। दूर-दूर के स्थानों और बीकानेर शहर के हिन्दुओं मे आज भी परम्परा है कि मृतक के शरीर की भस्म को इस तालाब में ही लाकर समर्पित करते है। इसके पीछे मृतक की मुक्ति की भावना ही प्रधान होती है।

कोलायत को यह महत्व प्राप्त होने का कारण इसका कपिलायतन होना यानि कपिलमुनि की साधना स्थली होना ही है। साथ ही एक दूसरा महत्व-पूर्ण कारण यह भी हो सकता है कि "विलुप्त सरस्वती नदी" के पुराने मार्ग की खोज करने वाले देश के सर्वोच्च विद्वानों का मत है कि सरस्वती का पाट कोलायत के पास से होकर था। नदियों के किनारे जहां-जहां महान् ऋषि

मुनियों ने अपनी साधना स्थली बनाई वहां-वहां हमारे देश में तीर्थ बन गये यह आम बात हर आदमी जानता है ।

कपिलायतन का उल्लेख स्कंध पुराण के *अठारवें अध्याय में आया है जिसमें बताया गया है कि कपिलायतन पुष्कर* के पश्चिम में २१ योजन की दूरी पर स्थित है । एक योजन पुराने चार कोस के बराबर माना जाता था । आज एक कोस में तीन किलोमीटर के लगभग माने जाते हैं । इस प्रकार कपिलायतन आज के कोलायत की दूरी पुष्कर से अढाई सौ किलोमीटर के लगभग हो बैठती है ।

पुष्कर और कोलायत तीर्थों में एक समानता यह भी चलती आ रही है कि दोनों ही स्थानों पर सबसे महत्वपूर्ण स्नान पर्व कार्तिक सुदी पूरणमासी को ही माना जाता है । इस दिन से कई दिन पहले से दोनों स्थानों पर भारी मेले भरने लगते हैं । लाखों लोग और हजारों पशु मेले में आ ठहरते हैं । दोनों ही स्थानों पर उपयोगी वस्तुओं एवं पशु क्रय-विक्रय का कार्य जोरों से होता है ।

कोलायत का नाम तो दूर-दूर तक है पर अब से दो तीन दसाब्दी पूर्व इसकी आबादी केवल सैंकडों में ही थी – जबकि यह प्रशासनिक दृष्टि से तहसील का केन्द्र है । बस या रेल से प्रवेश करने वाले यात्रियों को ऐसा लगता है कि वे एक बड़े कस्बे में प्रवेश कर रहे हैं, क्योंकि पूरा कोलायत गांव धर्मशालाओं और मन्दिरों से भरा पड़ा है । जहां केवल मेले के दिनों में ही विशेष रौनक होती है । *अन्य दिनों में तो यहां का वातावरण पहले बहुत सूना-सूना* और अब इन वर्षों में कुछ-कुछ रौनकदार होने लगा है ।

कोलायत उत्तरी रेल्वे का इस इलाके में आखरी स्टेशन है, जहां बीकानेर से केवल एक शटल थोड़े से डिब्बे लेकर चलती है । माल डिब्बे भी साथ ही लगे रहते हैं । यह गाड़ी आज के रफ्तार एवं तनाव भरे युग में भी बेफिक्री के साथ चलती हुई रास्ते में दो-तीन स्टेशनों पर ठहरती हुई मस्त

चाल से कोलायत पहुंचती हैं, और वहां थोड़ी देर सुस्ता कर फिर बीकानेर की ओर चलने की सीटी देकर उसी ढंग से चल पड़ती है।

क्षेत्र के लोगों की एक लम्बे समय से मांग चलती आ रही है कि इस लाइन को जोधपुर, जैसलमेर मार्ग के रेल्वे स्टेशन फलोदी से मिला दिया जाय, ताकि बीकानेर से जैसलमेर तक के सूने क्षेत्र के विकास की नई सम्भावनाये सामने आ सकें और इस क्षेत्र का खनिज उद्योग भी बढ़ सके। इससे इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र को भी कई तरह से लाभ हो सकता है।

बसों की दृष्टि से कोलायत काफी ठीक हो चला है, बीकानेर, जैसलमेर पोकरण और फलोदी की बसें यहीं होकर निकलती हैं। यात्री रेल को बजाय बसों से यात्रा करना पसन्द करते है। इससे उनको किराया तो रेल से अधिक देना पड़ता है लेकिन समय की बचत और सुविधा का अपना महत्त्व होता है। कोलायत राष्ट्रीय राजमार्ग नम्बर-१५ पर है। अब तेजी से विकास कर रहा है। आबादी बढ़ती जा रही है।

पच्चास-साठ वर्ष पहले तक कोलायत में कोई गृहस्थ घर बना कर नहीं रहते थे। मन्दिरों के पुजारी अकेले ही रात को रहते थे या आस-पास के अन्य छोटे-छोटे गांवो मे अपना परिवार रखनेवाले पुजारो और मन्दिरों धर्मशालाओं के कर्मचारी वहां चले जाते थे। कोलायत में जन्मा हुआ कोई निवासी आज पचास-साठ वर्ष की आयु से अधिक का नहीं मिलेगा।

कोलायत के तालाब पर पहुंचते ही यात्री को एक विशेष प्रकार की अनुभूति सी होती है। लम्बे, चौड़े तालाब के तीन ओर बने हुए घाट और छतरियां, किनारे के पेड़ों की पानी में पड़ती हुई परछाइयां, पानी पर तैरते हुए जलपक्षियों के कलोल से वातावरण बड़ा प्यारा लगता है।

तालाब के मुख्य घाट पर कपिल मुनि का सुन्दर मन्दिर, उसके आगे ही छोटा सा प्राचीन मन्दिर जिसे कपिल की मां देहुती का मन्दिर बताया

जाता है। पंचमन्दिर जिनमें कई देवी-देवताओं के मन्दिर है। गंगामन्दिर सत्यनारायण मन्दिर आदि प्रमुख हैं। वैसे दर्जनों अन्य मन्दिर और हैं। अब इन वर्षों में तो यहां आर्यसमाज, गुरुद्वारा आदि भी बन गये हैं। हरिजनों के द्वारा निर्मित बाबा रामदेव मन्दिर भी है। गांव में बिजली तो बीकानेर राज्य के समय से ही है। पीने के उत्तम पानी का कुआ भी वर्षों पुराना है।

मेले के अवसर पर भारी बाजार लग जाता है, राजकीय प्रदर्शनियां लग जाती है। राजनैतिक दल लोगों की उपस्थिति का लाभ लेने के लिये सभा सम्मेलनों का आयोजन करते हैं, लेकिन धर्मभीरु लोगों का ध्यान तो केवल इस बात में रहता है कि पूर्णिमा के प्रातः ही तालाब के जल मे डुबकी लगा कर मन्दिरों के दर्शन करना और शाम तक यहीं रुका जा सके तो शाम होते ही तालाब के पानी पर जलते हुए दीपक तैरा कर अपने गांव या शहर के लिये रवाना होने की दौड़ में लग जाना, वैसे हर सोमवती अमावस्या, चन्द्र-ग्रहण, सूर्यग्रहण, मकरसक्रान्ति आदि अवसरों पर भी हजारों लोग स्नान के लिए पहुंचते रहते हैं -- यह सक्षिप्त सी कहानी है उस कोलायत तीर्थ की जो भारत-पाक सीमा के निकट के क्षेत्र मे महाभारत काल से भी पूर्व में स्थापित हुआ तीर्थ स्थल है।

दानों में सर्वोत्तम दान अन्न का दान

भगवान् विष्णु कहने लगे हे लक्ष्मी जी! दानों में सर्वोत्तम दान अन्न का दान है। अन्न देना प्राण देने के तुल्य है। यह सारा संसार प्राण पर ही प्रतिष्ठित है। अन्नदाता, आयु, धन, विद्या, पुत्र, और कीर्ति को प्राप्त करता है। अन्नदान के प्रभाव से धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थ सहज ही प्राप्त होते है। किन्तु हे देवि! प्राणी मात्र को अभय दान देने के समान तो कोई भी दान नही है। क्योंकि अहिंसा के समान जगत् में कोई दूसरा धर्म नही। समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव रखने से मनुष्य ब्रह्मलोक तक प्राप्त कर लेता है।

तीर्थराज पुष्कर

- देवीसिंह नरुका

पद्म पुराण की एक कथा के अनुसार सृष्टि रचयिता ब्रह्मा जब यज्ञ करने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में थे, उसी समय उनके हाथ में कमल की पंखुड़ियां गिरी जहाँ स्वतः ही पानी निकल आया। आदि देव ब्रह्मा ने इसी स्थान पर यज्ञ करने का निश्चय किया। यज्ञ के लिये सभी तैयारियां की जाने लगी। यज्ञ करने के लिये ब्रह्मा वेदी पर विराजमान हो गये किन्तु उनकी पत्नी सावित्री वहाँ नही पहुँच सकी थीं। सावित्री ऐसे शुभ पवित्र अवसर पर विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, शिव की पत्नी पार्वती और इन्द्राणी के साथ सजधज कर आने की तैयारी कर रही थी। यज्ञ के प्रारम्भ होने का मुहूर्त बहुत निकट आ गया किन्तु सावित्री के पहुँचने का आसार दिखाई न हो दे दे रहे थे। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा कि वह निर्धारित समय पर यज्ञ अवश्य करेंगे अतः कोई उपाय किया जावे। इन्द्र तुरन्त एक कमलनयनी गुर्जर कन्या को ले आये। उसे पवित्र कर ब्रह्मा ने अपनी अर्द्धांगिनी स्वीकार किया और यज्ञ प्रारम्भ किया।

अन्य देवियों के साथ जब सावित्री यज्ञ स्थल पर पहुंची तब उसने अपने स्थान पर दूसरी पत्नी को बैठे देखकर वह क्रोधित हुई और रूठ कर निकट की पहाड़ी पर चली गई। यद्यपि ब्रह्मा ने सावित्री को वस्तु स्थिति समझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु विफल रहे और उसने क्रोध में श्राप दे दिया कि पुष्कर के अतिरिक्त ब्रह्मा का कहीं भी पृथक से मन्दिर नहीं होगा। संभवतः यही कारण है कि विष्णु और महेश के तो अनेक मन्दिर हैं किन्तु ब्रह्मा का मुख्य मन्दिर तीर्थराज पुष्कर में ही है।

सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा का यज्ञ स्थान होने के कारण वेद, पुराण और धर्म ग्रन्थों में पुष्कर राज की महिमा का बखान किया गया है।

पद्म पुराण में ही उल्लेख है कि एक बार महर्षि पुलस्त्य ने भीष्म पितामह से कहा" राजेन्द्र : पुष्कर तीर्थ करोड़ ऋषियों से भरा है। उसकी

लम्बाई ढाई योजन (दस कोस) और चढाई आधा योजन (दो कोस) है। यही तीर्थ का परिमाण है। वही जाने मात्र से मनुष्य को राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जहाँ अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदी में ज्येष्ठ पुष्कर में प्रवेश किया है। वही चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और चारणों का आगमन होता है। अतः इस तिथि को देवताओं और पितरों के पूजन में प्रवृत हो वहीं स्नान करना चाहिये। इससे वह अभय पद को प्राप्त होता है और अपने कुल का भी उद्धार करता है।..............................पुष्कर में तीनों संध्याओं के समय प्रातःकाल मध्यान्ह एवं सांयकाल में दस हजार करोड़ तीर्थं उपस्थित रहते हैं तथा आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्धगण, गन्धर्व और अप्सराओं का भी प्रतिदिन आगमन होता है। वहीं तपस्या करके कितने ही दैत्य, देवता तथा महर्षि दिव्य योग से सम्पन्न एवं महान पुण्यशाली हो गये। जो मन से भी पुष्कर तीर्थ के सेवन की इच्छा करता है, उस तीर्थ में देवताओं और दानवों के द्वारा सम्मानित भगवानब्रह्मा जी सदा ही प्रसन्नपूर्वक निवास करते है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी इस तीर्थ में स्नान-दानादि पुण्य के अधिकारी है। विशेषतः कार्तिक की पूर्णिमा को जो पुष्कर तीर्थ की यात्रा करता है, वह अक्षय फल का भागी होता है।"

शिव पुराण की कथा के अनुसार एक बार शिवलिंग को मापने के लिये ब्रह्मा ऊपर की ओर तथा विष्णु नीचे की ओर गये किन्तु दोनों में से कोई भी उसकी चोटी अथवा=मूल स्थल तक नहीं पहुँच सके। किन्तु ब्रह्मा ने कहा कि वह शिवलिंग की चोटी तक पहुँच चुके है। इस असत्य भाषण के लिए ब्रह्मा को श्राप दिया गया कि उनकी पूजा के लिये पुष्कर के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर पृथक से मन्दिर नहीं होगा।

इसी कथा को चरितार्थ करने के उद्देश्य से निर्मित एक प्रस्तर प्रतिमा राजस्थान के सीकर जिले में हर्ष की पहाड़ियों में प्राप्त हुई है। जो अजमेर के राजकीय संग्रहालय में है।

वाल्मीकी रामायण में उल्लेख है कि एक बार जब महर्षि विश्वामित्र पुष्कर तीर्थ के तट पर तपस्या कर रहें थे तब अप्सराओं में सर्वांग सुन्दरी मेनका पुष्कर सरोवर में स्नान करने आई, जिसके मेघों में विद्युत की भाँति चमकते अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर विश्वामित्र कंदर्प (काम) के वशीभूत हो गये—

'ततः कालेन महृत मेनका परमाप्सरा ः
पुष्करेषु नर श्रेष्ठ स्नांतु समुपचक्रमे ।
तां ददर्श महातेजा मेनका कुशिकात्मजा
रूप्रणा प्रतिमा तत्र विद्युत जलदे यथा ।"

पद्मपुराणानुसार-पर्वतों में जैसे सुमेरु पर्वत तथा पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ माने गये हैं उसी प्रकार से सभी तीर्थ में पुष्कर राज को आदि व श्रेष्ठ माना गया है—

"पर्वतानां यथा मेरु पक्षीणां गरन्डो यथा ।
तध्दत्समस्त तीर्थाना मादूयं पुष्कर मिष्यते ।"

सभी तीर्थो में स्नान और दान के द्वारा गणी पवित्र होते है, इसमें कोई संशय नही है लेकिन पुष्कर राज के दर्शन मात्र से ही शीघ्र पापों से छुटकारा मिल जाता है—

"पुनँति सर्व तीर्थं नि स्नान दानेव संशय ।
पुष्करा लोकना देव सद्यः पापन्प्र मुचूंयते ।।

ऋगवेद और यजुर्वेद में भी पुष्कर के महत्त्व के प्रमाण मिलते हैं ।

पद्म पुराण में उल्लेख है कि भगवान राम ने वनवास के समय पुष्कर के ही निकट अपने पिता का श्राध्द किया । मंडोर (जोधपुर) के राजा नरहरिदास ध्दारा पुष्कर सरोवर में स्नान करने से उनके शरीर का कुष्ट रोग दूर होने का भी उल्लेख मिलता है ।

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कश्मीर के कवि जयानक पुष्कर में निवास करते थे । कवि जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय' (११८६-११६३ ई०) में लिखा है ।

"तापत्रयं दर्शनता वहान्ति मलत्रयं स्पर्शनतो तुदन्ति ।
संध्यात्रय वदनतो जयंति स्रोतस्त्रयविस्मरयति मांगने ।"

अर्थात तीनों पुष्कर दर्शनमात्र से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पापों को जला देते है, स्पर्शमात्र से मलत्रय का निवारण कर देते हैं, वन्दन से प्रात: मध्यान्ह और सायं सध्या को जीतते हैं। नि: सन्देह यह पवित्र पावनी गगा के प्रवाह को भी भुला देते है।

बादशाह जहांगीर करीब तीन वर्ष तक अजमेर में रहे। 'वह तुजके जहांगोरी' में लिखते है कि इस अवधि में उन्होंने नौ बार ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के जियारत की और १५ बार पुष्कर गये। यहीं पर उन्होंने लाल पत्थर का एक भवन बनवाया जो अब भी जहांगीर के महल के रूप में माना जाता है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में संभवत: धार्मिक मान्यतायें बदल रही हैं किन्तु वर्ष भर पुष्कर में आनेवाले तीर्थयात्रियों का तांता लगा रहता है। ऋषि-मुनियो ने, पूर्वजों ने जिस स्थान को पवित्र माना है उसके प्रति श्रद्धा-भाव होना स्वाभाविक है। बड़े-बड़े राजनेता और देशी विदेशी यहीं आकर अपने को धन्य समझते हैं। कार्तिक मास में एकादशी से पूर्णिमा तक यहीं विशाल मेला लगता है।

पत्नीतीर्थ

सदाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा ।
पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला ।।
एव गुणा भवेद् भार्या यस्य पुण्या महासती ।
तस्य गेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः ।।
पितरो गेहमध्यस्था: श्रेयो वाञ्छन्ति तस्य च ।
गङ्गाद्या: सरित: पुण्या; सागरास्तत्र नान्यथा ।।
पुण्या सती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा ।
तत्र यज्ञाश्च गावश्चऋषयस्तत्र नान्यथा ।।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमं सुखम् ।।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तरणाय हिताय च ।

गलताजी

- श्री सत्यप्रिय नागर

नगर के कोलाहल से दूर पहाड़ियों के अंचल में स्थित, प्रकृति के आकर्षक परिवेश से सुसज्जित जयपुर नगर के पूर्व में मैदानी धरातल से लगभग ३५० फीट ऊपर तथा मुख्य नगर से लगभग साढे चार किलोमीटर की दूरी पर एक रमणीक तीर्थ स्थान है, जो 'गलताजी' कहलाता है। जयपुर नगर से गलताजी का सामान्य मार्ग सूरजपोल होकर जाता है। सूरजपोल अथवा गलता दरवाजा से बाहर निकलने पर लगभग डेढ़ किलोमीटर चलने के बाद पर्वत की बडी-बड़ी श्रेणियां हैं जो गलताजी की पहाड़ियां कहलाती है। इन्हीं पर्वत श्रेणियों के पास एक ओर द्वार बना हुआ है। जयपुर नगर से इस द्वार तक पक्की सडक बनी हुई है। सड़क के अन्तिम छोर से ही पर्वतों के बीच एक घाटी आरम्भ होती है जो गलताजी की घाटी कहलाती है। यही घाटी सर्पाकार चलती हुई गलताकुण्ड तक चली गई है।

यह पुण्य स्थली गालब ऋषि की तपोभूमि होने के कारण गालवाश्रम के नाम से भी प्रसिद्ध है जिसका अपभ्रंश लोक नाम गलता हो गया। गालब ऋषि ने १५ शताब्दी पूर्व इस सुरम्य-शान्तस्थली को तपस्या के अनुकूल पाकर अपनी तपोभूमि बनाया था।

गलताजी चारों ओर से ऊंची-ऊंची पर्वतमालाओं से घिरा हुआ अत्यन्त रमणीय स्थान है। इसमें प्रसिद्ध आठ कुण्ड हैं जिनके नाम हैं– यज्ञ कुण्ड, करम कुण्ड, चौकोर कुण्ड, मर्दाना कुण्ड, जनाना कुण्ड, बावरी कुण्ड, केले का कुण्ड और लालकुण्ड। इन सब में बडा और प्रधान कुण्ड मर्दाना कुण्ड है। गलताजी के इस बड़े कुण्ड संगमरमर का एक गोमुख झरना निरन्तर गिरता रहता है। गोमुख से पड़ने वाली इस जल-धार के उद्गम स्रोत का पता आज तक भी नहीं चल पाया है। अतीत काल से यह जल-धार अहर्निश निर्बाध रूप में गोमुख से कुण्ड में गिरती चली आ रही है। यह जल-धार गंगाधार मानी जाती है। ऐसी लोकोक्ति है कि गालव मुनि की तपस्या से

प्रसन्न होकर गंगा यहां प्रकट हो गई जो आज भी नियमित प्रवाह में है।

बहुत पहले की बात है जब एक बार जयपुर के महाराज शिकार खेलते हुए पर्वताचंल में स्थित ऋषि के आश्रम की ओर आ निकले। इस आश्रम के समीप साधुमहात्मा सिंह का रूप धर कर पर्वतों पर विचरण करते थे। राजा ने एक सिंह पर गोली चलाई जो सिंह के पिछले पांव में लगी और यहां रक्त की धार बह निकली। उसी समय यह सिंह अपना रूप छोड़कर एक महात्मा के वास्तविक रूप में प्रगट हुआ और राजा से कहा–'राजन् आपने इस आश्रम की ओर शिकार खेलने की हिम्मत कैसे की ? इसके फलस्वरूप आपको कुष्ठ रोग हो।' यह शाप दे कर वह महात्मा गायब हो गये। कहते हैं कि वही गालव ऋषि थे। राजा अपने महलों में लौट गया किन्तु उसी दिन से वह कुष्ठ रोग से ग्रसित हो अधिकाधिक पीड़ित रहने लगा। सभी उपचार करवाने पर भी राजा को रोग से छुटकारा न मिला। दुःखित हो कर राजा अपने कुछ साथियों के साथ महात्मा की तलाश में उसी आश्रम की ओर चला। अत्यन्त प्रयत्न के बाद महात्मा एक पर्वत की गुफा में समाधिस्थ मिले। समाधि के बाद राजा ने प्रार्थना की– 'हे प्रभो ! मैं अनजान में अज्ञानता वश इधर आखेट खेलने चला आया था। मेरा अपराध क्षमा कीजिये और कृपया इस रोग से मुक्ति का कोई उपाय बताइये।' दयावान महात्मा ने राजा से कहा– 'राजन ! इस स्थान पर एक पक्का आश्रम और इसमें एक विशाल कुण्ड बनवा दीजिये मैं उस कुण्ड में गंगा की एक जल-धारा ला दूंगा। वह जल-धारा जब तक संसार रहेगा, तब तक कभी बन्द न होगी। उसी गंग-धार में स्नान करने से तेरा कुष्ठ रोग जाता रहेगा और जो कोई उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा या जल का आचमन करेगा वह पापों से मुक्त हो कर मोक्ष को प्राप्त होगा।' राजा ने ऐसा ही अनुसरण किया और उसका कुष्ठ रोग जाता रहा।

गलताजी के जनाना कुण्ड के दक्षिण की ओर एक छोटी पहाड़ी पर महात्मा पियाहारी की गुफा है। गुफा के द्वार पर महात्माजी का एक चित्र

कांच में जड़ा हुआ है। यह गुफा कोसों दूर तक चली गई है। कहते है, इस गुफा का पता लगाने के लिये एक बार कुछ साधु उसमें घुस गये थे। उनका बाद में कुछ भी पता न लगा। तब से इस गुफा का द्वार राज्य की ओर से सदैव के लिये बन्द कर दिया गया। महात्मा पियाहारीजी के चित्र के सामने पूर्व जयपुर राज्य की ओर से अखण्ड धूनी लगी रहती थी जो कभी नहीं बुझती थी। पियाहारीजी एक बड़ तपस्वी और पहुँचे हुए महात्मा हुए हैं। कहते हैं कि इनकी तपस्या से सिंह और गाय एक घाट पर पानी पीते थे और इनकी आंख का इशारा पाते ही बड़े-बड़े हिंसक जन्तु भी इनके पांवों पर लोटने लगते थे। ये परम योगी महात्मा संत कवि नाभाजी के शिष्य थे। जयपुर के भूतपूर्व महाराजा ईश्वरीसिंहजी इनके पूर्ण भक्त थे और उन्होंने इनसे कई योग-सिद्धि की बातें सीखी थी। महात्मा पियाहारीजी बहुधा सिंह वेश में घूमते सुने गये हैं।

गलता तीर्थ तपस्वी महात्माओं के लिए सदैव से प्रसिद्ध रहा है। किंवदन्तियों के अनुसार यहां कई बार पर्वतों की लुप्त गुफाओं में साधु–महात्मा तपस्या करते हुये पाये गये हैं। कहा जाता है कि सन् १९१७ ई० में जब गलता के मर्दाना कुण्ड की छटाई और खुदाई हुई थी, तब उस समय कुण्ड के अन्दर एक तिबारा निकला था, जिसमें सात साधु तपस्या करते हुए दिखाई दिये थे किन्तु क्षण भर में वे विलीन हो गये।

गलता की प्रमुख पहाड़ी पर, जयपुर नगर के ठीक सामने पूर्व दिशा की ओर सूर्य भगवान का एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यहां से जयपुर नगर का दृश्य अत्यन्त ही मनोहारी दीख पड़ता है। मन्दिर में सूर्य भगवान की स्वर्ण प्रतिमा है। प्रति वर्ष माघ शुक्ला सप्तमी (सूर्य सप्तमी) के दिन यहीं से सूर्य भगवान का रथ निकलता है। उस दिन यहां विशाल मेला लगता है। सूर्य की स्वर्णमूर्ति एक विशाल चांदी के रथ में विराजमान कर उसकी शोभा यात्रा निकली जाती है। गलताजी के सूर्य मन्दिर से लेकर नगर में त्रिपोलिया द्वार तक बड़ा भारी मेला रहता है। रथ पुनः घूम कर अपने मन्दिर में चला जाता है। सूर्य मन्दिर की स्थिति ऐसी उत्तम है कि मुख्य जयपुर के निवासी

जब प्रभात की वेला में उठ कर सूर्य की ओर दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सूर्य ठीक उसी सूर्य मन्दिर में से निकल रहा हो। सूर्य मन्दिर के अतिरिक्त गलता तीर्थ स्थित अन्य मन्दिरों में एक प्रमुख मन्दिर महादेवजी का भी है।

गलता तीर्थ पर सूर्य सप्तमी, रामनवमी, निर्जला एकादशी, जलझूलनी एकादशी के दिन बड़े भारी मेले लगते हैं व यहां सहस्त्रों यात्री आते हैं चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण और पर्व स्नानार्थ बड़ी भीड़ रहती है। चतुर्मास में तो यहां की छटा निराली ही होती है। श्रावण शुक्ला प्रतिपदा से पूर्णिमा तक यहां बराबर मेला लगा रहता है। सैकड़ों नर-नारी प्रतिदिन यहां आते और 'गोठ' या दावतें किया करते है। श्रावण में यहां वन-सोमवारों का मेला देखने योग्य होता है।

सुबह होते-होते ही श्रद्धालु भक्तों की भीड़ 'नरबदे हर' हर-हर गंगे' का उच्चार करते हुए कुण्ड के पवित्र जल मे स्नान करने लगते हैं। कुछ लोग कुण्ड के उस शीतल एव स्फटिक जल में तैरते हुए गोमुख से प्रभाहित जल धार के नीचे खड़े होकर झरने का आनन्द लेते है और हर-हर महादेव' का उच्चारण करते जाते है।

नीले क्षितिज के पार खिलती सूर्य की किरणें गलताजी की सारी छटा को सतरंगी बना देती है। वृक्षों की हरीतिमा में तोते और बहुरंगी चिड़ियां घाटी में बहती हवाओं में सरगम भर देती हैं। निःसन्देह गलताजी का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम ही है जो दर्शकों व यात्रियों के लिये जीवन भर की स्थाई स्मृति बन जाता है।

प्रतिदिन गलता तीर्थ में यात्री ही रहते हैं। यहां पर मुख्यतः बंगाली और गुजराती तीर्थयात्री बहुतायत से आते है। जो यात्री जयपुर जाकर गलताजी नही जाता उसकी जयपुर यात्रा अधूरी समझी जाती है।

वेणेश्वर

- डॉ० महेन्द्र भानावत

नार्यो वेणासरियो मेलो, नार्यो धीरी रीजे ए
नार्यो खूणावालो कोटो „ „
नार्यो मांणा गऊंड़ा काड़ो „ „
नार्यो काड़ ने करीने „ „
नार्यो हूलियां रा हूपेड़ा „ „
नार्यो मेले आपी जाहां „ „
नार्यो चुड़लो जोवन जाइहे „ „
नार्यो भर जोबन में ई है „ „

गीत गाते हुये ये टोले आदिवासी महिलाओं के हैं। इनके पांवों ने रात-रात भर लम्बी सड़क नापी है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ और उदयपुर के सुदूर गांवों, बस्तियों और टेकरियों से रुनक-झुनक स्वर-ताल के ठेकों में इन्होंने संगीत की स्वर लहरियों से सारे मार्ग को सुवासित किया है। वेणेश्वर बाबा से दूजा और कोई बाबा नहीं। वेणेश्वर मेले से दूजा और कोई मेला नही। एक नही सैंकड़ों झुंड के झुंड बरसाती बेरियों की तरह उमड़ते घुमड़ते यहां एकत्र हो रहे हैं। भील, मोणे हो क्यों और भी कई आदिवासी जातियां है- ड़ेगेर, ननोमा, हूंडियार, खराड़ी, बुक्र, भसार, भगोरा, तावोड़, डामोर कलासुआ, कटारा, दायगा आदि कितने ही नाम हैं। मेले की हुंस में ये नाम फूले नहीं समा रहे हैं।

लोकतीर्थ वेणेश्वर सोम जाखम और माही नदियों का संगम-स्थल है। डूंगरपुर और बांसवाड़ा की सीमाओं पर अरावली पर्वतमाला के मध्य अवस्थित इस तीर्थ के महात्म्य का साक्षी स्कंद पुराण है। माही मध्यप्रदेश से आती हुई राजस्थान में मोरन, ऐराव, मादर, चाप और अनास को मिलाती हुई-आत्मसात करती हुई, सोम पर संगम बनाती है। बागड़ की यह गंगा-

माही मध्यप्रदेश की ही नहीं राजस्थान की भी बड़ी नदी है। संगम से तात्पर्य है वेणेश्वर अर्थात् तीनों के कटाव का सुन्दर सुथरा द्वीप। प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूरित वेणवृक्षों की झुरमुटी में शांत स्निग्ध दूर-दूर तक हराभरा भला किसके मन को नहीं भायेगा ? माघपूर्णिमा (शिवरात्रि) पर लगने वाला यहां का मेला आदिवासियों का सबसे बड़ा मेला, जाखम, सोम और माही के साथ-साथ आदिवासी संस्कृतियों रंगीनियों, रासक्रीड़ाओं और नृत्यगीतों की बहारों का सगम।

वेणेश्वर का मेला डूंगरपुर जिले की असपुर तहसील के नवातपुरा नामक स्थान पर जुडता है। उदयपुर – बांसवाड़ा – डूंगरपुर बस मार्ग पर स्थित सावला गाव से कोई ६ किलोमीटर दूर यह लोकस्थल है जो उदयपुर से १२३ किलोमीटर, बासवाड़ा से ५३ किलोमीटर तथा डूंगरपुर से ४५ किलोमीटर पडता है।

बागड प्रदेश (सोम तथा जाखम नदी के मध्य) मे कटारा क्षेत्र का यह शिव मन्दिर लिगाकार मे प्रतिष्ठित है। वेणेश्वर नाम भगवान् शिव के लिग से उत्पन्न है जो सोम और माही नदी के डेल्टा पर आराधित है। २० से मी. का यह लिंग कहते हैं स्वय उद्भूत हुआ जो स्वयम्भू लिंग कहलाया। यह लिंग भी पाच स्थानों पर खडित है। इसके लिए एक कथा प्रचलित है।

कहते है कटारा के पास ही नवातपुरा नाम का पुराना गांव, यहां से प्रतिदिन एक गाय शिवमन्दिर आती और शिवलिंग पर दुग्धाभिषेक कर चली जाती। ग्वाला परेशान हो गया। एक दिन ग्वाला और गाय-धनी उसके पीछे-पीछे चले। गाय शिवमन्दिर पहुंची। दुग्धाभिषेक करते हुए उसने अपने मालिक को देख लिया। फलतः वह वहां से भागी। भागते समय शिव-लिंग उसके खुर के नीचे आ गया इससे वह पांच स्थानों से खण्डित हो गया।

सवत् १५१० का बनाठना यह मन्दिर आज भी मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात की गर्वोक्ति बना हुआ है। इस मन्दिर के पास ही त्रिविक्रम-विष्णु, लक्ष्मीनारायण और ब्रह्मा के तीन मन्दिर और बने हुए हैं जो तीन

संप्रदायों के अस्तित्व को रोशन करते हैं। भगवान् विष्णु का मन्दिर संवत् १८५० में सत मावजी की पुत्रवधू जानकुंवारी ने बनवाया तथा ब्रह्माजी का मन्दिर संवत् १९८८ में इस क्षेत्र के गौड़ ब्राह्मणों द्वारा बनवाया गया था।

तीन नदियां, तीन देव, तीन प्रांत और तीन क्रिया कांडों (स्नान, मुंडन और तर्पण) का यह तीर्थ वस्तुतः अपने असाधारण कलाकल्प का सुमेर, बना हुआ है। पास ही सावला गांव मे सन्त मावजी का मानिन्दा मठ। एकादशी को यहां के पीठाधीश अपने समस्त वैभव के साथ शाही ठाटबाट में यहां आते हैं। सारा मेला धार्मिक ताने बाने में बुनता-तनता दृष्टिगोचर होता है। मावजी की आगमवाणियों का पाठ और अनेकानेक भविष्यवाणियां। अगाध श्रद्धा और अटूट-विश्वास में सराबोर आदिवासी इसमें भाग लेना अपना धार्मिक पावन कर्त्तव्य समझते हैं।

पन्द्रह दिन के इस भरपूर मेले में भीड़ इतनी रहती है कि पांव रखने को जगह नही मिलती। एक हरड़ाटा आया कि एक स्वांस में पूरी सड़क पार हो गई। यहां अनेक व्यापारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। नड़स, हल कुदाली, खुरपी से लेकर तीर, कमान, तलवार, भाले यहां मिलते है। पीतल तांबे-मिट्टी के बर्तन, नकली गहनों का असली सिणगार, काजल, टीकी, बिन्दी काच-कांगसी, फुंदी-रुमाल और गोदने वाली मशीनों के नाना गोदनें स्थल की छटा को बढ़ाते हैं। भील स्त्रियां पूरा का पूरा शरीर गोदाती हैं।

बेणेश्वर का यह मेला माघशुक्ला एकादशी से माघशुक्ला पूर्णिमा तक भरता है। मठाधीश पूजा के साथ मेले का विधिवत प्रारम्भ करता है। यहां भील और अन्य जाति के लोग नदी जल में अपने पूर्वजों की अस्थियां चढ़ाते हैं तथा पूजा आराधना करते हैं। माही नदी का यह क्षेत्र गुप्त-क्षेत्र अर्थात् पावन क्षेत्र कहलाता है।

यहां मुख्य शिव मन्दिर में दिन में दो बार पूजा की जाती है। चढावा सभी भक्त चढा सकते है पर मूर्ति को पुजारी के अलावा कोई भी नहीं छू

सकता। प्रातः की पूजा में गूगल और खोपरा तथा शाम की आरती में भभूत का प्रयोग होता है। जबकि इसके ठीक पास विष्णु एवं ब्रह्माजी के मन्दिर में दिन में पांच बार की पूजा दी जाती है।

वेणेश्वर का पुजारी सेवक जाति का होता है जो अपनी उत्पत्ति ब्राह्मण से मानते हैं।

जिसमें पच्चीस प्रकार की डिजाइनें, तीसों प्रकार के अंगलेख, सरकस थियेटर नटों-और जादूगरों के करतब एक से एक कमाल शामिल है। और इन सबके परे एक और डोलरों की लम्बी कतारों तथा चंग-डोलर और घाडा डोलर में आदिवासी वनवासी सौंदर्य विकीर्ण हो उठता है :

आजकल यह मेला आसपुर पंचायत समिति की देख-रेख में आयोजित होता है। इस मेले की मुख्य विशेषता है भील जाति की भव्य झांकियां जो भारतवर्ष के एक अन्य लोकजगत को हम सबसे सहज ही जोड़ देती हैं। हरिवंशपुराण में लिखा है कि साबल गांव में कल्कि का अवतार होगा। ऐसी पावन स्थली का गौरव भला समय कैसे कम कर पायेगा ?

वेणेश्वर का माहात्म्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का ऐसा सोपान प्रस्तुत करता है जहां इस भव और परभव की आत्मिक जिजीविषाएं एकाकार हो शाश्वत सौख्य उडेलती है।

आदर्श गृहिणी और तीर्थ

हिन्दू नारियों ने अपनी अद्भुत संयोजन शक्ति से गृहस्थाश्रम को मन्दिर की पवित्रता से विभूषित कर दिया है। वह उस मन्दिर की पुजारिन है। सर आर्थर डेविड भारतीय नारी के इसी आदर्श की ओर इंगित करते हुए कहते हैं–

"हिन्दू आदर्श के अनुसार स्त्री गृहस्थी की पुजारिन है। वह घर के तुलसी आदि पवित्र वृक्षों को जल देती है, होम की अग्नि संभाल कर रखती है, स्नान और पूजा पाठ से मुक्त होकर अन्न को भी पवित्र रखती है। उसकी गृह-सेवा ही भक्ति का एक अंग होती है। वह घर के बाहर केवल तीर्थयात्रा के लिये ही जाती है, परन्तु घर के भीतर वह समस्त व्यापारों का केन्द्र होती है।

– सती ग्रन्थ

बाण गंगा

- कैलाशचन्द्र शर्मा

राजस्थान के गुलाबी नगर जयपुर से लगभग ८५ किलोमीटर दूर जयपुर-अलवर दिल्ली मार्ग पर एक ऐतिहासिक स्थान है 'बैराठ'। और बैराठ से ११ किलोमीटर की दूरी पर है बाणगंगा। निर्मल और पवित्र जल से कलकल करता हुआ एक चश्मा। चश्मे के किनारे स्थित कई मन्दिरों और तालाबों ने इस स्थान की शोभा को और भी बढ़ा दिया है। बाणगंगा नाम से हमारे देश में और भी कई नदियां और चश्मे विख्यात हैं किन्तु एक बहुत बड़े इलाके में इस प्रकार का केवल एक ही चश्मा होने के कारण बाणगंगा पर लोगों की अपार श्रद्धा और विश्वास होना स्वाभाविक ही है।

हर वर्ष वैशाख की पूर्णिमा को बाणगंगा पर बड़ी धूमधाम से मेला लगता है। अलवर, बहरोड़, कोटपूतली, डीग, भरतपुर और जयपुर तक के असंख्य यात्री यहां एकत्र होते है और रंग-बिरंगे परिधानों में सजे, नाचते-गाते बाणगंगा और पांडवों की स्तुति करते हैं। बाणगंगा की उत्पत्ति को अर्जुन से सम्बद्ध माना जाता है। आज के दिन बाणगंगा में स्नान करने का बड़ा महत्व माना जाता है। यहां हर व्यक्ति स्नान कर अपने को धन्य मानता है।

कहा जाता है कि महाभारत में वर्णित 'विराट नगर' बैराठ ही है। महर्षि वेद व्यास की आज्ञानुसार अपने बनवास का १३ वर्ष पांडवों ने राजा विराट के राज्य ही में बिताया था। मेले के स्थान से कुछ ही दूरी पर खेजड़ा वृक्ष है जिस पर कहा जाता है पांडवों ने अपने हथियार छिपा कर रखे थे।

यह कहना कठिन है कि यहां मेले का आरम्भ कब और कैसे हुआ। यद्यपि मेले में यात्री मुख्यरूप से महाभारत के वीरों (पांडवों) को स्मरण कर श्रद्धा-सुमन अर्पण करने ही यहां आते है, किन्तु ठीक-ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि यह मेला महाभारतकाल से ही चला आ रहा है। फिर भी यह तो निश्चित ही है कि २०० वर्ष पूर्व जब से जयपुर के श्री नन्दारामबख्शी ने इस स्थान पर राधाकृष्णजी का मन्दिर बनवाया तब से हर वर्ष यह मेला बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

मेले के दिन बाणगंगा की चहल-पहल देखते ही बनती है। तरह-तरह की दुकानों से बाजार सज जाता है। ग्रामीण जनता को अपनी आवश्यकता की लगभग हर वस्तु यहां उपलब्ध हो जाती है। नाच रंग का अभाव यहां नहीं अनुभव होता। रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजे हुए मीणा जाति के स्त्री-पुरुषों से नाच-गाने में होड़ लेना हर एक के वस की बात नहीं है। यह लोग अधिकतर बाणगंगा और पांडवों की स्तुति मे ही गीत गाते हैं।

प्रतिदिन दो बार राधाकृष्णजी को भोग लगाया जाता है। भोग में चावल रोटी, दाल आदि (कच्चा खाना) पदार्थ होते हैं। मेले और त्योहारों के अवसर पर पूरी-लड्डू पक्का खाना) बनाकर राधाकृष्णजी को अर्पित किया जाता है। भोग लगने के पश्चात् यही वस्तुएं श्रद्धालु यात्रियों को 'प्रसाद' के रूप में वितरित करदी जाती हैं। अन्य देवताओं को भोग जौ और दालों के रूप मे लगाया जाता है। कुछ लोग श्रद्धानुसार धन भी अर्पण करते हैं। बाणगंगा मन्दिर के पुजारी रामानन्द सम्प्रदाय को मानने वाले ब्राह्मण हैं। यह लोग यात्रियों की सुविधा और आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते हैं और उनकी भरसक सहायता करते हैं। मेले की पूर्व सध्या से ही कीर्तन और भजनों से वातावरण गूंजित हो जाता है। दूसरे दिन प्रातः भक्त लोग बड़ी श्रद्धा के साथ पवित्र बाणगंगा में स्नान करते है और उसके पश्चात् आसपास के अन्य दर्शनीय स्थल देखने जाते हैं।

राधाकृष्णजी के मन्दिर की इमारत दुमंजिली बनी हुई है। मन्दिर में राधाकृष्ण के अतिरिक्त गरुड और पांच पांडवों सहित द्रोपदी की मूर्ति भी बनी हुई है। यहां कई शिवलिंग भी स्थापित किये गये हैं जिनमें से पंचमुखी महादेव अथवा एकादश रुद्र का अपना ही महत्व है। मन्दिर के पास ही नन्द कुण्ड, बाण कुण्ड और महादेवजी का मन्दिर तथा अन्य दर्शनीय स्थल हैं।

बाणगंगा का यह मेला लोगों की अपार श्रद्धा का द्योतक तो है ही साथ ही एक बहुत बड़े क्षेत्र के विशाल जनसमूह के लिए संगम का कार्य भी करता है। वर्ष भर के कठोर परिश्रम के पश्चात् बाणगंगा की यात्रा देव-दर्शन, पवित्र स्नान और मनोरंजन भोले ग्रामीणों के जीवन में एक नयी चेतना और विश्वास को जन्म देता है। परम्परा और इतिहास के अनेक अनमोल और धूमिल पृष्ठों को छिपाए हुए यह मेला हमारे राष्ट्र और संस्कृति की ...ी धरोहर है।

सकराय माता

- श्री बाबूलाल शर्मा

राजस्थान के सीकर जिले में, सीकर के पास सकराय माताजी का स्थान राजस्थान के प्रख्यात धर्म स्थानों में से एक है। माल केत नामक पर्वतमाला यहां आकर मंडलाकार हो गयी है। जिसके बीच बड़े-बड़े आम्र-तरुओं की शीतल छाया है और उनके बीच से शक्र-गंगा की पतली धारा बह रही है जो बीच-बीच के कुण्डों में आकर विस्तृत भी हो जाती है। यहीं पर शक्र-गंगा के दाहिने तट पर सकराय-माता का भव्य मन्दिर है जिसका निर्माण विक्रम सम्वत १९७२-८० में हुआ। इससे पहले जो प्राचीन मन्दिर यहा था वह सं० १०५६ के लगभग बना था। यह शेखावाटी का प्राचीनतम तीर्थ-स्थल है। यहां वर्ष में तीन मेले लगते हैं– चैत्र व आसोज के माह के नवरात्रों में नौ-नौ दिन के और भाद्रपद में चार दिन का। सारे वर्ष में यहां लाखों की संख्या में यात्री आते है।

इस स्थान का पौराणिक वृत्तांत है कि यहां शक्र (इन्द्र) ने तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप यहा बहने वाली जल धारा शक्र-गंगा के नाम से विख्यात हुई और यहां स्थापित जगदम्बा की प्रतिमायें शक्र-माता के नाम से जानी गयीं। बाद में शक्र-माता से ही सकराय-माता शब्द बन गया। इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने शंकर-माता से शकराय-माता बताया है। ऐसा भी बताते है कि इधर से पाण्डव गुजरे थे। ऐसी और भी कतिपय दंत कथायें प्रचलित हैं। यह स्थान बहुत पुराना है जिसके प्रमाण स्वरूप यहां प्राप्त मन्दिर के जीर्णोद्धार सम्बन्धी तीन शिलालेखों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है। यह अनुवाद १९३५ ई० में इतिहासज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जब यहां आये तब उन्होंने किया था।

सबसे पुराना शिलालेख सम्वत् ७४९ द्वितीय आषाढ़ सुदी २ का है। इसके प्रारम्भ में देवी जी की स्तुति है फिर इस मन्दिर का मण्डप बनाने वालों का परिचय है। मन्दिर का मण्डप बनाने वालों में सबसे पहले धगर वंश के

सेठ यशोवर्द्धन, उसके पुत्र राम, उसके पुत्र मण्डन तथा धरकर वंश के सेठ मण्डन, उसके पुत्र यशोवर्द्धन, उसके पुत्र गग अनन्तर किसी दूसरे धरकर वंश के भट्टोयक, उसके पुत्र वर्द्धन, उसके पुत्र गणादित्य और देवल के साथ ही तीसरे धरकर वंशीय शिव, उसके पुत्र वैण्णवाक, उसके पुत्र आदित्य-वर्द्धन आदि के नाम है। इन सेठों ने मिलकर शंकरा देवी (सकराय माता) के सामने का मण्डप बनवाया।

दूसरा शिलालेख इस मन्दिर के उत्तरी भाग के बाहर लगा हुआ है। इस लेख के बीच का अधिकांश भाग बिगड़ गया है। जिससे पूरा आशय नहीं मिलता। यह विग्रहराज चौहान के समय का प्रतीत होता है, इसमें वच्छराज तथा उसकी स्त्री दायिका के नाम पढ़ जाते हैं। वच्छराज विग्रहराज का काका था ऐसा हर्ष के शिलालेखों में पाया जाता है। इसमें शकरा देवी के मन्दिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है। अन्त में सम्वत् ५५ माघ सुदी पंचमी लिखा हुआ है। अनुमान है इसमें आरम्भ के दो अंक एका (१) तथा बिन्दी (०) छोड़ दिये गये हैं। ठीक सम्वत् १०५५ होना चाहिये।

तीसरा लेख है १०५६ सं० का है इस लेख का आशय इस प्रकार है, 'सम्वत् (१०५) ६ मावण बदी १ के दिन महाराजधिराज दुर्लभराज के राज्य के समय श्री शिवहरी के पुत्र तथा उसके भतीजे (भ्रातृव्यज) सिद्धराज ने शकरा देवी का मण्डप कराया। काम किया सींवट के पुत्र आहिल ने जो देवी के चरणों में नित्य प्रणाम करता है। प्रशस्ति खोदी बहुरूप के पुत्र देवरूप ने।'

इस विवरण में दूसरे व तीसरे शिलालेखों के सम्वतों से अन्य अनुमान भी लगाया जा सकता है। जैसा कि दोनों सम्वतों मे केवल १ वर्ष का अन्तर है जो जीर्णोद्धार के सम्बन्ध मे ठीक नहीं जंचता। अत. अन्तिम दोनों शिला लेखों में से किसी एक का सम्वत् काफी प्राचीन होना चाहिये।

यहां प्रबन्ध हेतु नाथ पंथियों (कनफटे योगी) की गद्दी है। यहां के सर्व प्रथम नाथ पंथी मठाधीश श्री शिवनाथजी महाराज थे जिनके बारे में बताया जाता है कि. काश्मीर के किसी महाराजा के पुत्र थे और अपने अन्य तीन

भाइयों सहित सन्यास ले चुके थे। जब शिवनाथजी यहां आये तो सकराय-माता की पूजा एक गुर्जर भोपा करता था, जिसका नाम जैला था। थोड़े दिनों में इन दोनों मे मित्रता हो गयी और शिवनाथजी महाराज यहां की पूजा करने लगे क्योंकि जैला को पूजा क लिए एक दूसरे गांव से आना पड़ता था। एक दिन दोनों भक्तों में एक दूसरे क चमत्कार की चर्चा चल पड़ी और इसी बात में शिवनाथजी ने सिंह का रूप धारण किया। जब वे पूर्व स्थिति में आये तो उन्हे जीवन से पूर्ण विरक्ति हो गयी और उन्होंने जीवत-समाधि लेने का निश्चय किया। साथ ही उनके दस चेलों ने भी यही निश्चय किया; पर उनमें से एक को, जो यादव था और पास ही के राजपुर नामक ग्राम का निवासी था, माताजी के मन्दिर के प्रबन्धहेतु छोड़ दिया। इसी वंश में आज तेईसवें महाराज यहां के मठाधिपति है। इन शिवनाथजी के पदचिन्हों पर यहां देवालय बने हुए हैं।

श्री शिवनाथजी महाराज के बाद धूणीनाथजी, दयानाथजी, पृथ्वीनाथ जी, करणीनाथजी, शिवनाथजी (द्वितीय) के नाम मिलते हैं। जो सबसे महत्त्वपूर्ण नाम हैं वह है तत्कालीन मठाधीश श्री बालकनाथजी के गुरु गुलाबनाथजी का। ये बड़े ही सरल, स्वरज्ञानी, बहुश्रुत और व्यवहारकुशल महात्मा थे। इस स्थान को विशेष रूप से पुजवाने का श्रेय इन्हीं को है। इन्हीं के समय में लाखों की लागत से नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ।

यहां श्री माताजी के मन्दिर के अलावा शंकर-गंगा के वाम कूल पर जय शंकर का मन्दिर है जो बहुत प्राचीन है इसमें स्थित शिव-प्रतिमा, गुप्तकालीन है। यहीं एक मदनमोहनजी का मन्दिर है जो लगभग ५०० वर्ष पुराना है। यह और जयशंकर का मन्दिर लगभग एक ही ढंग के बने हैं। यहां माताजी के स्थान के अतिरिक्त लगभग डेढ किलोमीटर पर 'खो-कुण्ड' नामक स्थान है जहां ठण्डे पानी के कुण्ड है और आस-पास में चारों ओर आमों की घनी छाया तथा लाल कनेरों की बहार है। ऐसी किंवदंति है कि यहां रावण ने तपस्या की थी और इसी नाम पर यहां रावणेश्वर महादेव का मन्दिर है। पहले यहां ८४ मन्दिर थे पर अब केवल तीन शेष हैं।

गौतमेश्वर

- श्री हिम्मत मालवीय

राजस्थान के दक्षिणी भूखण्ड गोडवाड में अरावली पर्वतमालाओं के बीच, पाली व सिरोही जिलों के मध्य पश्चिमी रेल्वे के दिल्ली-अहमदाबाद रेल मार्ग पर नाणा– (पंचायत समिति शिवगंज) स्टेशन से करीब १० किलोमीटर दूर प्रकृति की गोद में रमणीय स्थल पर बना एक मन्दिर है। मन्दिर में मीणा जाति के इष्टदेव और शौर्य के प्रतीक गौतमेश्वर ऋषि महादेव की प्रतिमा विद्यमान है। इस मन्दिर में शिल्पकला का अद्भुत नमूना तो देखने को नहीं है, फिर भी सौन्दर्य की दृष्टि से यह बहुविख्यात है।

मूकडा नदी जिसे सब लोग पतित पावन गगा भी कहते हैं दाहिने किनारे की एक टेकडी (पहाड़ी) पर परकोटे से घिरा यह मन्दिर है जिसे सर्वप्रथम एक गूजर ने अपूर्ण बनाकर छोड दिया था। उसके पश्चात् मीणा जाति के लोगों ने इस मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण करवाया व मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव भी सम्पन्न किया था।

चारों ओर विशाल परकोटे से घिरे तीर्थ-स्थल मे विभिन्न देवताओं की प्रतिमाएं विद्यमान हैं। गौतमेश्वर ऋषि के मुख्य मन्दिर के श्वेत-शिखरों की झांकी यात्री को दूर से ही मिल जाती है। इस मन्दिर का परकोटा दूर से एक छोटा सा गढ प्रतीत होता है। मन्दिर में साधु-सन्तों के बैठने को एक बडी गैलेरी, भोजन शाला और मोदीखाना है।

मन्दिर का प्रवेश द्वार उत्तर दिशा में है और अन्दर प्रविष्ट करते ही दाहिनी ओर श्री गौतमेश्वर ऋषि महादेव का लिंगाकार है। उनके पीठ के पीछे बाई ओर गजानन्द व अहेल्यिा, दाहिनी ओर अंजली, सम्मुख नन्देश्वर (नांदिये) की प्रतिमाएं विद्यमान है।

मन्दिर के बाहर पीछे दाहिनी तरफ गौतमऋषि और बाई ओर अम्बाले माता के छोटे-छोटे मन्दिर है। मध्य मन्दिर के सम्मुख हनुमान, गंगेश्वर

गजानन्द, धर्मराज, शनेश्वर भगवान आदि की प्रतिमाएं विराजमान हैं।

इस मन्दिर की प्राचीनता के प्रमाण तो अभी तक प्राप्त नही हो सके है लेकिन लोगों का ऐसा अनुमान है कि यह मन्दिर हजारों वर्ष पुराना है। वैसे श्री लल्लू भाई देसाई द्वारा लिखित 'चौहान कुल कल्पद्रुम' (भाग प्रथम) में वि० सं० १६३२ के पूर्व भी यहां मन्दिर मौजूद बताया है। गौतमेश्वर मन्दिर के सम्बन्ध में अभी तक लिखित प्रमाण के अभाव में यह ज्ञात नहीं हो सका है कि यह मन्दिर किसने बनवाया, क्यों बनवाया व इसका नाम गौतमेश्वर क्यों रखा गया ?

इस तीर्थ-स्थल से तीन-चार पौराणिक दंतकथाएं जुडी हुई है। कुछ लोगों का यह मानना है कि श्री गौतम ऋषि ने इन पर्वतमालाओं में तपश्चर्या की है। गौतम ऋषि की कोई प्रतिमा नहीं है। लेकिन अहेलिया व अंजली की प्रतिमाओं का होना व मन्दिर को गौतमजी का मन्दिर नाम से सम्बोधित करना, यह प्रकट करता है कि इस स्थान से श्री गौतम ऋषि का सम्बन्ध रहा है।

एक अन्य दतकथा के अनुसार गोंगमुआ नामक मीना, एक गूजर की मवेशी चराया करता था और जब वह मवेशी को लेकर अरावली पर्वत-मालाओ में घुसता था तो उस समय एक गाय हमेशा उसके साथ हो जाया करती थी और शाम को वापिस लौट जाती थी। साल भर पश्चात गाय एक बछड़े को जन्म देती है और गोंगमुआ मीना बछड़े को लेकर गाय के पीछे-पीछे जाता है। गाय जाकर एक टेकडी की गुफा के पास रुक जाती है जिसमें एक ऋषि और दो महिलाएं निवास करती थीं। गोंगमुआ उनसे साल भर की गाय-चराई मांगता है। ऋषि ने उसको कुछ 'जौ' डाले। गोंगमुआ न जाने क्यों उन्हें वापिस डालकर चला गया। ऋषि उसके भोलेपन को देख मुस्कराये गोंगमुआ जब घर पहुंचा तो उसकी पत्नी की दृष्टि उसके कपडे पर चमकती वस्तु पर पडी और पूछा कि यह क्या वस्तु है ? गोंगमुआ ने जब सारा वृत्तान्त सुनाया तो उसकी पत्नी ने कहा कि वह ऋषि नही ईश्वर का रूप है। गोंगमुआ वापिस पहुंचता है और ऋषि के चरण स्पर्श कर कहता है कि मैं

अब आपकी सेवामे अपने आपको प्रस्तुत करता हूँ। वह तपश्चर्या में लग जाता है। ऋषि उसकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर पूछते हैं कि गोंगमुआ तुम क्या चाहते हो ? वह अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहता है कि एक तो मेरा नाम रोशन हो और दूसरे प्रतिवर्ष मेरी जाति यहां पर एकत्रित हो ऋषि ने कहा ऐसा ही होगा। उसके पश्चात यहां प्रतिवर्ष मेला भरने लगा जिसको लोग 'गोंगमुआ का मेला' कहते थे। जो आगे चल कर 'गौतमजी का मेला' नाम से पुकारा जाने लगा।

इसी दौरान गोंगमुआ की भक्ति से प्रभावित होकर एक गूजर ने यहां पर एक मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया जिसे वह सम्पूर्ण नहीं कर सका उसके बाद मीणा जाति के लोगों ने इस मन्दिर का कार्य पूर्ण करवाकर इसकी व्यवस्था का कार्य भार अपने ऊपर लिया।

यह मेला वैशाख माह की मकर संक्रान्ति के ९० दिन बाद १३ अप्रेल से १५ मई, ३० दिन तक चलता है। भयकर अकाल के समय कुओं का पानी सूख जाता है पर यह उल्लेखनीय है कि मेले के प्रारम्भ होने के समय से गौतमेश्वर मन्दिर की सीढियों के पास 'गगा कुण्ड' नामक स्थान से प्राकृतिक रूप से पानी फव्वारे की भाँति बाहर आता है और लगभग तीन किलोमीटर के क्षेत्र में एक-दो फिट की खुदाई करने पर अपार मात्रा में मीठा पानी उपलब्ध हो जाता है। आने वाले यात्रियों का ही यह विश्वास नहीं है अपितु एक वास्तविकता है कि मेले के दिनों के अतिरिक्त-समय में ऐसा कभी नहीं होता।

मेले में मीणा लोग सिर पर लाल साफा जिसका एक पल्ला कानों पर लटकता हुआ, कमीज की जेब में रेशमी रूमाल, कानों में झेले, हाथ में फूंदकीदार छाता, एक पैर में चांदी का कड़ा आदि पहिने हुए बड़े सज-धज के साथ मेले में आते हैं और एक दूसरे के गले में हाथ डालकर एक बडी मस्ती से गौतमेश्वर के गीत गाते हैं।

केशवराय पाटन

- श्रीनन्दन चतुर्वेदी

महाराजा रंतिदेव की प्रवाहमान कीर्तिकथा, पुण्य सलिला चर्मण्वती दक्षिण से आती और पट्टनपुर (पाटन) के पैर पखारती हुई पूरब को मुड जाती है। बम्बई-दिल्ली लाइन पर केशवराय पाटन बूंदीरोड स्टेशन से लगभग ५ किलोमीटर और कोटा से मोटर द्वारा लगभग सात किलोमीटर पड़ता है। पट्टनपुर नगर नहीं है लेकिन देहात भी नहीं कहा जा सकता। यह एक कस्बा है, जिसकी जनसंख्या आठ-दस हजार के बीच होगी। कार्तिकी पूर्णिमा पर यहां विशाल मेला लगता है। इस अवसर पर देश के विभिन्न भागों से आये हुए अनेकानेक श्रद्धालु जन श्री केशवरायजी, चारभुजाजी एवं जम्बुकेश्वर महादेव के दर्शनार्थ आ जुड़ते हैं। वर्तमान पाटन का विस्तार ढाई कोस भी कठिनाई से होगा किन्तु किसी समय यह बडी भव्य नगरी रही होगी क्योंकि वायु पुराण के अनुसार चौरासी कोस के जम्बू भाग के बीच इसका स्थान-विस्तार पांच कोस माना गया है। परशुराम-जमदग्नि संवाद के बीच इस प्रसग पर पर्याप्त चर्चा हुई है। यथा हरिवंश पुराण में भी जम्बुकारराय और केशवराय पाटन के पुण्य महात्म्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

मुख्य नगरी केशवरायपाटन में और उससे दूर-दूर तक कितने ही देवालय खण्डहर हुए पड़े हैं, कितने ही भूमि में धँस गये है और कितने ही जनसंकुल मार्गों से कहीं दूर वीरानियत की खामोशी में अपने अतीत की स्मृतियां सजोये पड़े हैं। पूर्व की ओर चम्बल हरहराती बहती है, शेष दिशाओं में दूर तक बिछे लहलहाते खेत हैं, पीछे से चम्बल की नहर निकल रही है और समूची धरती अतीत खण्डहरों से भरी है।

पट्टन (पाटन) की परिधि के मुख्य देवालयों में श्री केशवराय पाटन का मन्दिर प्रमुख देवालय है। चैत्र की पूर्णिमा पर इसका विशाल प्रांगण कितने ही दर्शनार्थियों के पदचाप से भर उठता है। इस मन्दिर में रावराजा

रघुवीरसिंह (बूंदी) का विक्रमी सं० १९५९ में लगवाया गया शिलालेख है जिसके अनुसार इस मन्दिर का निर्माण बूंदी के रावराजा श्री शत्रुशल्यजी ने विक्रमी सं० १६९८ में करवाकर किसी जीर्ण मन्दिर से उठाई गई दो प्रतियायें इस में स्थापित कीं। एक प्रतिमा केशवरायजी की जो श्वेत संगमरमर की है मुख्य मन्दिर में तथा दूसरी श्री चारभुजाजी की कृष्ण मूर्ति जो परिक्रमा के मन्दिर में है।

यह मन्दिर विष्णुतीर्थ से ठीक ऊपर नदी तट से दो सौ फीट की ऊंचाई पर है जिसमें अन्दर, बाहर, सर्वत्र विविध प्रकार की पशु-आकृतियां, नृत्य मुद्रायें और कृष्ण सम्बन्धी भागवत की कथायें मूर्तिरूप में उत्कीर्ण हैं। अन्दर की प्रतिमाओं पर चटकीले रंग हैं, जब कि बाहरी दीवारों की प्रतिमायें बार-बार चूने से पोती जाकर वे तरह दब गई है। मंदिर के बीचोंबीच बने गरुड ध्वज से संगमरमर की गरुड़ मूर्ति हाथ जोड़े हुई श्री केशवरायजी को देख रही है।

इसी प्रकार पाटन के दक्षिणी छोर पर भगवान् सुतनाथ का जैन मन्दिर स्थित है। जिसमें जैन तीर्थङ्करों की विविध रंग के पत्थरों की कलात्मक प्रतिमायें हैं। मुख्य छतरी के नीचे एक गुहा है जिसे 'भं देहाडा' कहा जाता है।

मंत्रो के हनुमानजी का मन्दिर नगर के उत्तर पूर्व में लगभग छः फर्लांग दूर है। मन्दिर अति प्राचीन शिवालय कहा जाता है जिसमें महावीरजी की स्थापना होल्कर द्वारा की गई बताते है। पुराण के अनुसार मैत्रावरुण ऋषि ने इस स्थान पर तप किया था फिर ब्रह्मा ने त्रिपुरासुर के वधार्थ यहां यज्ञ किया तब भगवान् शिव यहां श्वेतवाहन पर आरुढ़ हो शुभ्ररूप से प्रकट हुए और यज्ञ पूरा होने पर यज्ञकुण्ड को जल से पूर्ण कर स्वलिंग रूप में अवस्थित हुए।

वराह तीर्थ पाटन से लगभग डेढ किलोमीटर दूर पड़ता है। बूंदी रोड़ सड़क से लगभग पचास गज दूर खेतों के बीच स्थित है। मन्दिर बहुत पुराना है। तिवारी की छत की अनेकों पटिटयां टूट चुकी है। थम्भों पर बहुत पुराने

समय का कुट्टिम है। गुम्बद पर यत्र तत्र सिंह प्रतिमायें बनी हैं। यहां वराह भगवान् की मूर्ति बड़ी सुडोलता व सावधानी से गढ़ी गई लगभग साढे चार फीट की है।

एक और दर्शनीय स्थान है- जल के जवूंजो। नदी मध्य होने से यह स्थान वर्षाकाल में जल मग्न हो जाता है। यह ठीक उस जल स्थल पर है जहां नदी पूर्व को मुड़ती है। इसे श्वेतवाहन मुखेश्वर तीर्थ भी कहा जाता है। यहां दो शिव लिंग व नन्दी प्रतिमायें हैं। अवन्तिका पुरी के सुदेव ब्राह्मण की अंतर्कथा इस के साथ जुडी हुई है।

इनके अतिरिक्त केशवराय पाटण में कितने ही महत्वपूर्ण देवालय है जिनका सबका अपना अलग पौराणिक इतिहास है। इनमें रुद्रतीर्थ, ऋण-मोचन तीर्थ, स्वर्ग द्वार, गौ, पंचरुद्र अथवा अग्नितीर्थ, सौपर्ण तीर्थ, सारस्वत ब्रह्माणी सर, वैकुण्ठ श्वेतवाहन, विश्राम तीर्थ. मुक्ति तीर्थ, श्री करकरा भैरव आदि प्रमुख हैं।

हरिवंश तथा वायु पुराण इन प्रतिमाओं की कीर्तिकथा तथा इस समूचे प्रदेश के आख्यानों से भरे हैं कहते हैं परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर मानसिक शांति के लिये इसी स्थान पर तप किया था। भगवान् विष्णु कल्पवृक्ष लाते समय यहां विश्राम को रुके और पांडव गण भी युधिष्ठिर के के साथ जम्बुकारराय की यात्रा के समय यहां पधारे थे।

श्री केशवरायजी व चार भुजाजी की मूर्तियों के सम्बन्ध में एक पौराणिक आख्यान है। राजा रंतिदेव के यज्ञ व तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें वर दिया, राजन्! जम्बुकारराय में पट्टनपुर (पाटन) नामक पुण्य क्षेत्र में जहां तुम्हारे यज्ञ से उत्पन्न चर्मरावती नामक गंगा के किनारे जम्बू-मार्गेश्वर शिव विराजमान हैं, वहीं जाकर तुम मेरी आराधना करो। तुम्हारे ध्याना-नुसार वहां मेरे दो सुन्दर विग्रह श्याम और शुभ्र इस नदी से प्रकट होंगे। श्याम विग्रह में तुम्हारी भी प्रतिमायें होंगी। उनकी सेवा कर अन्त में तुम मेरी उसी विग्रह में समाविष्ट हो जाओगे।

श्री महावीरजी

- राजेशकुमार

देश के विभिन्न भागों में यों तो जैन धर्मावलम्बियां के अगणित तीर्थ-स्थल हैं लेकिन आधुनिक युग के अनुकूल जो महत्ता श्रीमहावीरजी स्थित तीर्थ-स्थान की है वह अपने आप में अनूठी तथा मानवीय समता का संदेश देने वाली है।

इस स्थान को तीर्थ कहा जाता है, जो किसी विशेषता से कम नहीं। जैन धर्म की मान्यता के अनुसार तीर्थ उसी स्थान को माना जाता है जहां तीर्थंकर का जन्म, तप या निर्वाण हुआ हो। श्रीमहावीरजी में ऐसा कुछ नही हुआ, लेकिन उसकी महत्ता कम नहीं है।

राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में पश्चिमी रेल्वे की गंगापुर तथा बयाना रेल लाइन के मध्य श्रीमहावीर स्टेशन है। आने - जाने का मार्ग सुविधाजनक है और प्रति वर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर जब यहां 'लक्खी मेला' भरता है तब विशेष व्यवस्था की जाती है।

श्रीमहावीरजी का स्थान का नाम लगभग चार सौ वर्ष पहले चांदन था। बाद में जब भगवान् महावीर की प्रतिमा प्राप्त हुई तो इसका नामकरण श्रीमहावीरजी हो गया। आज इस स्थान को चांदन ग्राम के नाम से कोई नहीं जानता। वह नाम इतिहास के पृष्ठों में सिमट कर रह गया है। श्रीमहावीरजी के नाम से ही यह स्थान विख्यात है।

यद्यपि इस स्थान के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तौर पर परिपूर्ण जानकारी विस्तार से उपलब्ध हनीं है लेकिन जो कुछ सामग्री उपलब्ध है उसके आधार परयह कहा जा सकता है कि सोलहवीं शताब्दी में वह प्रतिमा एक टीले से प्राप्त हुई थी जो आज जन-जन की निष्ठा और आकर्षण का केन्द्रहै।

कहते हैं एक चर्मकार की गाय नित्य इस टीले पर चरने के लिए आया करती थी। वह दिन भर वहां चरती लेकिन संध्या के समय जब वापस लौटती तब उसके थनों में दूध नही मिलता था।

चर्मकार को सन्देह हुआ। उसने विचार किया कि सम्भवतः कोई चोर गाय के थन में से दूध निकाल लेता है। तलाश के लिए एक दिन वह गाय के पीछे-पीछे निकल गया। लेकिन यह देखकर वह आश्चर्य में डूब गया कि एक विशिष्ट स्थान पर गाय जा कर ठहर जाती है और उसके थन से स्वतः ही दूध झरने लगता है।

तत्काल उस स्थान की खुदाई की गई और वहां भगवान् महावीर की लाल पाषाण को मनोहर प्रतिमा मिली। इस घटना का समाचार तुरन्त फैल गया।

दर्शनाभिलाषी अनेक व्यक्ति वहां पहुंचे जिनमें जैन धर्म के अनुयायी भी थे। उन्होंने इस प्रतिमा को अपने यहां ले जाना चाहा। लेकिन एक चमत्कार के बाद दूसरा चमत्कार हुआ किंवदन्ती के अनुसार प्रतिमा अपने स्थान से टस से मस भी नहीं हुई। आखिरकार उसी टीले पर एक चबूतरा बनाकर प्रतिमा स्थापित कर दी गई।

बाद में एक जैन श्रावक अमरचन्द बिलाला ने वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया और वेदी प्रतिष्ठा के समारोहिक आयोजन के साथ प्रतिमा को प्रतिष्ठित कर दिया गया।

यह सब हो चुका लेकिन उस व्यक्ति की यादगार अभी तक कायम है जिसकी सूचना पर प्रतिमा का पता चला था। जिस चर्मकार ने सूचना दी दी थी उसी के वंशजों को आज भी रथ के पहिये को छूने का अथवा समारोह के आयोजन का एक प्रकार से श्रीगणेश करने का गौरव प्राप्त है। प्रतिवर्ष मेले के अवसर पर जब रथ-यात्रा का शुभारम्भ होता है तब उस समय तक रथ को आगे नहीं बढाया जा सकता है जब तक कि चर्मकार उसे छू न ले। परम्परा का यह एक अनिवार्य भाग है।

मन्दिर मुगल तथा हिन्दू स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। मन्दिर के सामने के हिस्से में स्तूपाकार छतरियां है और पार्श्व भाग में ५० फीट ऊंचे तीन शिखर है। शिखर पर स्वर्ण कलश हैं। मन्दिर के आन्तरिक भाग

में स्वर्ण तेलचित्र हैं। बाए भाग में भित्ति-चित्र हैं। मन्दिर करौली के पत्थर से निर्मित हुआ है। लेकिन आगे का भाग अब संगमरमर का बनवा दिया गया है।

प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण गम्भीर नदी के तट पर अवस्थित यह विशाल मन्दिर न केवल जैन अपितु अ-जैन नर-नारियों के लिए भी आस्था का केन्द्र है। आस-पास तथा दूर-दूर से जैन धर्मावलम्बी एवम् अन्य समुदाय के व्यक्ति यहाँ दर्शनों के लिए आते है शीश नवाते हैं और मनोवाञ्छित फल की याचना करते हैं।

मेला प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला तेरस से वैशाख कृष्णा प्रतिपदा तक भरता है। मेले मे मीणा, गूजर तथा अहीर आदि जातियों के नर-नारी भी आते है। परम्परागत वाद्ययन्त्रों के साथ नाचते गाते उल्लसित एवम् आल्हादित नर-नारियों की जय लोक-लहरी गूंजती है तो वह हृदय को छू लेती है। सीधे-साधे शब्दों के इन लोकगीतों में लगता है कि विश्व का सम्पूर्ण दर्शन एवम् आध्यात्मिकता समा गई है।

मेला चार दिन तक चलता है और समारोह का श्रीगणेश ध्वजारोहण के साथ होता है प्रतिदिन भजन पूजन तथा अन्य सांस्कृतिक कार्य भी आयोजित किये जाते हैं। सध्या के समय मन्दिर का दृश्य 'दीपमालिका' जैसा लगता है। वैशाख कृष्ण प्रतिपदा को रथ-यात्रा तथा कलशाभिषेक के साथ इस कार्यक्रम का समापन होता है।

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने २५८७ वर्ष पूर्व 'स्वयं जीओ और दूसरो को जीने दो' का जो महान सन्देश दिया था वह इस तीर्थ स्थल मे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। भगवान महावीर ने जन साधारण को अहिंसक तथा सहिष्णु बनकर स्वयं के विकास का सन्देश दिया था। सर्व-धर्म-समभाव, सह-अस्तित्व तथा अहिंसा के उनके आदर्श एवम् प्रेरणादायक सदेशों की महत्ता को राष्ट्र आज भी स्वीकार करता है।

उदयपुरवाटी के "तीर्थस्थल"

- सीताराम शीतल (केड) उदयपुरवाटी

भारतीय संस्कृति के धर्म एवं आध्यात्मिक पक्षों के तात्त्विक विश्लेषण से
र्ष निकलता है कि समस्त तीर्थ स्थल ऋषि-मनीषियों के दार्शनिक
ारिक, दूरदर्शी चिन्तन के प्रमुख स्थल रहे हैं। धर्मधारणा के विस्तार
जनश्रद्धा के अभिवर्धन-पोषण हेतु इन स्थलों पर देवालयों की स्थापन
क्रिया भी रहती आई है। तीर्थ जन-जन में धर्म आस्था का समावेश कर
ल-शान्ति, शलीनता का वातावरण बनाने की भूमिका निभाते हैं। तीर्थ
थलों पर मानीषी गण "स्वर्गादपि गरीयसी" भारत भूमि के कोने-कोने में
थापित देवालय रूपी तीर्थों में रह जन चेतना में सतत् उत्कृष्टता का समावेश
रते हैं और भारतीय संस्कृति का आलोक पहुँचाते हैं। अगर ये स्थल न हों
ो धर्मधारणा विलुप्त हो जाती।

सम्पूर्ण भारत में फैले हमारे तीर्थ भारतमाता के अनुपम शृंगार तथा
तीर्थ यात्रा हमारी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का अनन्य उपहार है। उत्तर
में बद्रीनाथ दक्षिण मे रामेश्वरम् पूर्व में जगन्नाथपुरी तथा पश्चिम में द्वारका-
पुरी भारत की सीमाओं के उद्बोधक होने के साथ-साथ भारतीय भावनाओं
के पोषक हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक संस्कार की यही परिकल्पना समय-समय
पर सातपुरियों, बारह ज्योतिर्लिंगों, बारह प्रधान देवी विग्रहों इक्कावन सिद्धि
क्षेत्रों सात पावन नदियों, पांच पवित्र सरोवरों, पीठों तथा कालांतर में
विकसित अनन्य साधक महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज
अरविन्द ने तो भारतीय भूमि को आध्यात्मिक रूप में देखा।

राजस्थान प्रान्त जो पूर्व में राजपूताना के नाम से जाना जाता था के
एक भू-भाग को शेखावाटी भू-प्रदेश के नाम से जाना जाता है। उदयपुरवाटी
क्षेत्र इसी भू-प्रदेश का एक भाग है। इस भू-प्रदेश का वैदिककालीन, तथा
पौराणिक महाकाव्यों के साक्ष्य पर प्रागैतिहासिक काल की भू-स्थिति से,
पुरातन अवश्य

जांगलदेश, सपादलक्ष, मत्स्यदेश आदि पर विचार-करते हुये शेखावाटी भू-संभाग का सीमांकन किया गया है। गोपथब्राह्मण, मनुस्मृति तथा महाभारत से प्रकट होता है कि मत्स्य देश की राजधानी बैराट (बैराठ) थी। यही कालांतर में शेखावाटी प्रदेश की राजधानी थी। आधुनिक काल में शेखावतों से पूर्व करीब २८० वर्षों तक शेखावाटी के अधिकतर भाग पर नवाबों का शासन रह चुका था 'आइनेअकबरी' इसका प्रमाण है। कच्छवाहा शेखावतों द्वारा विजित होने से पूर्व शेखावाटी प्रदेश पर क्यामखानियों का राज्य था जो धर्म परिवर्तित चौहान राजपूत थे। कालांतर में पारस्परिक वैमनस्य, स्वार्थता, चारित्रिक दोष आदि दुर्गुणों के कारण बलिष्ठ शेखावतों का प्रतिरोध करने में असफल रहे और वि० १८ वीं शदी के अन्त तक शेखावतों का शासन शेखावाटी क्षेत्र पर हो गया। उदयपुरवाटी क्षेत्र स्वतंत्रता से पूर्व शेखावतों के शासन में रहा।

उदयपुरवाटी क्षेत्र उत्तर में ग्राम कोट दक्षिण में शिवनाथपुरा, नाटास पूर्व में नंगलीदीपसिंह एवं पश्चिम में भौड़की ग्राम है।

ग्रामीण क्षेत्र से घिरा क्षेत्र है। यह क्षेत्र झुन्झुनू जिले का पवित्र तीर्थ स्थल, पहाड़ी, सरसब्ज, दर्शनीय एव प्रमुख व्यापारिक स्थल है। इस भू संभाग में अनेक तीर्थ स्थल है जिनमें से लोहागल तीर्थ स्थल भारत प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ माना जाता है। हर वर्ष भादवा बदी ३० को यहां लखी मेला इस स्थल पर निरन्तर प्रवाहित करने के शुद्ध जल कुण्ड में स्नान कर तीर्थ यात्री अपने पापों से मोक्ष प्राप्त करते है।

लोहार्गल क्षेत्र का निर्माण कैसे हुआ ? कहते हैं, जितनी दूर में इस समय अरावली पहाड़ जो इस समय मालुकेतु पर्वत है (८० कोस में) उतनी दूर में ही यहां बड़ा सरोवर था जिसे ब्रह्महृद या ब्रह्मकुण्ड कहते हैं इसकी पावमानन शक्ति यहां तक बताते है कि इसमें जो व्यक्ति एक बार स्नान कर लेता है वह भवसागर पार कर जाता है। प्राचीन काल से यही मान्यता चली आ रही है। पापी मोक्ष प्राप्त करने लगे। यमराज के पास कोई जाता ही नहीं

था। अतः यमराज की याचना पर विष्णु भगवान् ने माल और केतु नामक दोनों पर्वत बन्धुओं को आज्ञा दी कि वे इस महान् सरोवर को ढक लें और इस प्रकार ब्रह्महृद को पूरी तरह ढक लिया गया। तब सरोवर की प्रार्थना पर इस सरोवर के पवित्र जल का पांच स्थानों पर निष्कासन किया गया और ये पांचों ही स्थान तीर्थ स्थल बन गये जिनमें लोहार्गल एवं शाकम्भरी माता (सकराय) प्रसिद्ध है 'लोहार्गल महात्म्यम्' इस पवित्र स्थल का पौराणिक प्रमाण है। भादवा की अमावस्या को लगने वाले मेले पर हजारों तीर्थ यात्री उदयपुरवाटी से पैदल यात्रा कर इस पवित्र तीर्थ स्थल पर पहुँचते है। यह परिक्रमा उदयपुरवाटी से किरोड़ी, कोट, किरोड़ी बान्ध, साकम्भरी, नागकुण्ड टपकेश्वर महादेव, सोभावती, रघुनाथगढ की घाटी, रघुनाथगढ होते हुये लोहार्गल तक होती है। यात्री भादवा बदी १० से यात्रा प्रारम्भ कर दुर्गम हरिभरी पहाड़ियों को पार करते हुये भादवा बदी १४ तक इस पावन स्थल पर पहुँच सूर्यकुण्ड में स्नान कर पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं। लोहार्गल एक प्राकृतिक दर्शनीय तीर्थ स्थल है। इस अवसर पर यहाँ बने सैकड़ों मन्दिर साधु-सन्यासियों एव तीर्थयात्रियों से भरपूर मिलते हैं। मन्दिरों में हरिकीर्तन भजन आदि का कार्यक्रम चलता है। यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में सूर्यमन्दिर एवं मालकेत जी का मन्दिर है। श्री मालकेत जी का मन्दिर जयपुर महाराज श्री मानसिह जी वर्तमान में महाराजा भवानीसिह के आधीन है भोग आदि का व्यय आज भी महाराज के कोष से किया जाता है यह एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित भव्य मन्दिर है।

लोहार्गल लोहे की बेड़ियां गलने वाला स्थान माना जाता है ऋग्वेद के अनुसार पाण्डव-कौरवों द्वारा १४ वर्ष का वनवास दिये जाने पर इस स्थान पर भ्रमण करते हुये पहुँचे थे। इस स्थल के जल में स्नान करने पर उनकी बेड़ियां गल गई थी। यहाँ एक कुण्ड है जिसकी खुदाई बाबा लहरी द्वारा की गई है भीमकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ बिरला धर्मशाला भी यात्रियों के ठहरने का एक आरामदायक स्थान है पर्वत का ऊँची चोटी जिसे वनखंडी के नाम से जाना जाता है यह अरावली पहाड की माउन्ट आबू जो सबसे ऊँची चोटी है

उससे दूसरे नम्बर की चोटी है। इसी से नीचे एक नाहरी का नाका नाम से स्थान है जहाँ बाबा हनुमानदास दादूपंथी ने तपस्या की थी। यह स्थान निर्जन है यहाँ अब भी यदाकदा बाघ, शेर आदि हिंसक पशु भ्रमण करते हुये पहुंच जाते हैं इसी कारण यह स्थान नाहरीका नाका' नाम से जाना जाता है। इस पवित्र स्थल पर विभिन्न प्रकार के कन्द मूल जड़ी-बूटियां प्राप्त होती है एव आम्रकुंज है। लोहार्गल भारत का एक महान् पवित्र तीर्थ स्थल है। यहाँ खाकीजी का मन्दिर भी दर्शनीय है। इस मन्दिर के महन्त श्री विश्वम्भर-दास जी है। गोल्यांणा से पक्की सड़क का निर्माण भी वतमान सरकार द्वारा करा दिया गया है अतः यात्रियों के लिये यह मार्ग सुगम हो गया है बिजली की व्यवस्था भी हो चुकी है यहाँ की आबादी करीब १५०० के लगभग है। चेतनदास की बावड़ी एवं ज्ञानवापी प्रसिद्ध बावड़ियां हैं।

किरोड़ी तीर्थस्थल

उदयपुरवाटी से दक्षिण पश्चिम में ५ किलोमीटर की दूरी पर यह तीर्थ स्थल है यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है जिसका निर्माण उदयपुरवाटी के 'शाह' परिवार द्वारा कराया गया था। मन्दिर का जीर्णोद्धार वर्तमान में बिरलाजी द्वारा कराया गया है। यहाँ तीन कुण्ड है-दो कुण्डों में ठंडा जल है एवं एक कुण्ड जो ठंडे कुण्ड के बिल्कुल ५ मीटर के करीब सटकर है उसमें हर समय गर्म जल रहता है। इसका कारण धार्मिक भावना वाले लोग साधु महात्माओं की तपस्या एवं ईश्वरीय देन मानते हैं वैज्ञानिकों का मत है कि इस स्थल पर सल्फर है अतः यह पानी गर्म रहता है इस स्थल पर धार्मिक पर्वों पर हजारों तीर्थ यात्री पहुंचते हैं और पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं। यह एक प्राकृतिक दर्शनीय स्थल है यहाँ आम, जामुन, ताड़ एव केवड़ा के पेड़ हैं। एक झरना है जिसमें निरन्तर पानी बहता रहता है। यात्रियों के ठहरने के लिये एक धर्मशाला भी है।

मनसामाता –

यह तीर्थ स्थल इस क्षेत्र का अतिरमणीय प्राकृतिक छटा से ओतप्रोत दुर्गम पहाड़ियों से घिरा एकान्त तपस्यास्थल है। श्रावण भादवा मास में

प्राकृतिक छटा अति सौन्दर्यमयी रहती है समस्त पहाड़ी भाग हरे-भरे पेड़ लताओं, जड़ी-बूंटियों से आच्छादित मनमोहक बन जाता है। यह तीर्थ स्थल ग्राम 'खो' के पश्चिम में ६ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस तीर्थ स्थल पर पहुँचने के लिये टांके से तीन किलोमीटर की चढाई पार करनी पड़ती है बस, जीप का रास्ता नहीं है पक्का खुर्रा है यात्री लोग पैदल, ऊँट आदि पर सवार हो यात्रा करते हैं। जम्मू में वैष्णवी देवी के तीर्थ स्थल पर पहुँचने के लिये भी पक्का खुर्रा है जिसकी १४ किलोमीटर की चढाई है उसी के अनुरूप यह तीर्थ स्थल ३ किलोमीटर की चढाई का मार्ग है।

मनसामाता का दर्शन एक गड़रिये को हुआ था ऐसा बतलाते है। आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व एक गडरिया इस स्थल पर भेड़-बकरी चरा रहा था कि अचानक एक चट्टान के फटने की आवाज उसे सुनाई दी। गडरिया भयभीत हुआ। भयभीत होने पर उसे सुनाई दिया कि डरो मत उसे आवाज के सिवाय कुछ नही दिखलाई दिया वह डरता ही रहा उसे भयभीत मान माता मनसा ने अपना रूप जो आज एक अगुण्ठ से कुछ बडा है धार कर गडरिये को दर्शन दिये। आज भी यहाँ स्थित मन्दिर में माता मनसा की दिव्य मूर्ति इसी आकार में है जिसकी पूजा ग्राम खो के योगियों द्वारा की जाती है। यहाँ पहाड से झरना झरता है जिसके पाँच बड़े प्राकृतिक कुण्ड है माता के मन्दिर के नीचे एक बड़ा कुण्ड है जहाँ प्रतिदिन तीर्थ यात्री स्नान कर माता के दर्शन कर पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं। यहाँ स्वर्गीय बाबा रामेश्वरदास टीबावसेई भी तपस्या कर चुके हैं। यात्रियों को ठहरने के लिये कमरे एवं तिबारे आदि पर्याप्त सख्या में है। मन्दिर व्यवस्था ग्राम गुढा, खो आदि ग्रामीणों की ओर से एक कमेटी का निर्माण कर की जाने लगी है। यात्रियों के लिये समस्त आवश्यक सामान यहाँ आने वाले तीर्थयात्रियों के आर्थिक सहयोग से प्राप्त कर जुटाया जाता है। मेरे दृष्टिकोण से यह स्थान इस क्षेत्र का एक अति उत्तम, पवित्र, प्रकृति छटा से भरपूर शान्तिप्रदान करने का एक अनोखा तीर्थ स्थल है।

किराउण्डा

यह तीर्थस्थल ग्राम गिरावड़ी की घाटी से होते हुये उत्तर में करीब ४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक चट्टान पर है यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है निर्जन स्थान है यहाँ एक झरना है जिसमें निरन्तर जल-प्रवाह होता है यहाँ कई ऋषि-मुनि तपस्या कर चुके है। बाबा कन्हैयादासजी दरोगा जाति के थे। ग्राम केड़निवासी थे, ने करीब २० वर्ष तक इस स्थान पर तपस्या की था। धार्मिक पर्वों पर सैंकड़ों यात्री मन्दिर दर्शनार्थ एवं स्नानार्थ पहुंचते है। यहाँ चट्टान मे बनी एक छोटी कुण्डी के आकार का एक जलाशय है जिसमे जितना जल निकाला जाता है उतना ही भर जाता है यह स्थल दूधाधारी बाबा की तपोभूमि रही है।

छापोली कुण्ड

उक्त तीर्थस्थल ग्राम छापोली से २ किलोमीटर की दूरी पर है। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। एक झरना है जिसका पानी एक कुण्ड में जो प्राकृतिक है, भरा रहता है। कुण्ड के समीप एक कदम का पेड़ है उस पेड़ की जड़ों के पास एक करीब 1½ फुट लम्बी त्रिकोण ½ फुट गहरी एक प्राकृतिक कुण्डी है जिसमें पानी का स्तर उसमें से पानी निकालने पर भी तत्काल उतना ही हो जाता है। यहाँ एक शिव मन्दिर है यात्रियों को ठहरने के लिये वर्तमान में ३ तिबारों सहित कमरे भी है। छापोली से उत्तर में पड़ता है रास्ते में पक्का धुर्रा है चढाई अधिक नहीं है। साधु-सन्यासियों की तपोभूमि रहती आ रही है बरसात में यहाँ पहाडों का पानी एक चादर के रूप में प्रवाहित होता है जब इस चादर का पानी गिरता है तो बड़ा रमणीय दृश्य बनता है। तीर्थयात्री शिवरात्रि एवं अन्य धार्मिक पर्वों पर यहाँ स्नानार्थ पहुंचते हैं।

हरजीमल कुण्ड

ग्राम गुढा की पहाड़ी पर एक प्राचीन तीर्थस्थल है पहाड़ी पर बने किले के नजदीक उक्त स्थान है। यहाँ एक पत्थर की कुण्डी है जो इस कुण्ड में

पानी पर तैरती रहती है धार्मिक लोगों की आस्था है कि इसका कारण कुण्ड की विशेषता एवं ऋषि-मुनियों की तपस्या का प्रभाव है। वैज्ञानिकों का मत है कि इस पत्थर की कुण्डी का निर्माण इसी ढंग का है कि यह पत्थर की होते हुये भी पानी पर तैरती रहती है। यह स्थल साधु महात्माओं का तपस्या स्थल है। धार्मिक पर्वों पर स्नानार्थ सैकड़ों श्रद्धालु इस पवित्र स्थल पर पहुंच कर पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं। यहां का जल तरवीणी नदी में प्रभावित होता है यह नदी किराउण्डा एवं समीपस्थ पहाड़ियों से निकलती है। गुढा ग्राम के पूर्व-दक्षिण में एक स्थान है जहां एक 'कूंवा' है जिसके पास वर्ष भर पानी रहता है तथा इस नदी में मिलता है यह नदी काटली नदी में मिलती है। इस स्थान पर भी तीर्थ यात्री धार्मिक पर्वों पर स्नानार्थ पहुंचते हैं।

केड सती धाम

ग्राम केड काटली नदी के पश्चिमी किनारे पर केडियों के पूर्वज श्री पाहुरामजी तथा भोलारामजी जो मण्डाल (दिल्ली के समीप) निवासी थे सन् १४५० में वह लूल लोदी के आतंक से अपने पूर्वजों पाच वर्ष के निवास के बाद इसे छोड़कर अन्यत्र वास करने के लिये निकल पड़े थे। जसरापुर के पास मोटेराम चौहान के पुत्र बुदर्दीखां का पुत्र जबर्दीखां को लुटेरे से भेंट हुई। मोटेराम चौहान के चार पुत्र थे हिन्दुत्व की रक्षार्थ एक पुत्र वेरी ग्राम में जा छिपा बाकी तीन राज्य लोभ से क्षत्रीय से मुसलमान हो गये। उनमें कायमखां को झुन्झुनू की नवाबी, जबर्दीखां को फतेहपुर का नवाब और बुदर्दीखां लुटमार करता रहा। इस बुदर्दीखां का बेटा जबर्दीखां जो नामी लुटेरा था से पहुरामजी की भेट हुई नजराने में एक मोहर भेंट की और इच्छा व्यक्त की, कि हम आपके संरक्षण में एक ग्राम बसाना चाहते हैं जबर्दीखां जो इन्हें लूटने पर उतारू था इनसे प्रभावित हुआ और इनके साथ चल पड़ा। इन्होंने अपना डेरा काटली नदी के किनारे डाला। बुधराम बांगड़वा जो एक जाट था वह भी जबर्दीखां का साथी था सबने स्थान तलाश किया और मिति वैसाख शुक्ला १२ बृहस्पतिवार सं० १५१५ वि०: के इस शुभ मुहूर्त में एक कैर की छड़ी रोपी एवं हिन्दू धर्म के अनुसार इस ग्राम की

पहाड़ी पर एक कैर की छड़ी रोपी इसी आधार पर इस ग्राम का नाम कड़ रखा गया था। इस क्षेत्र का यह अति प्राचीन ग्राम है।

केडिया सतीजी

स्थान ग्राम केड़ से पूर्व को ओर काटली नदी से पूर्वी किनारे पर हरियाले आँचल में स्थित है। यहां ९०० वर्ष पूर्व के खेमी, तोली, टुकरी और सतापी चार सती स्थान है। ये चारों सतियां केडिया वश के आदि पुरुष श्रीमान् भुण्डलजी थे। इन्होंने पुत्ररत्न प्राप्ति हेतु ४ विवाह किये अन्त में प्रथम स्त्री श्रीमती खेमी के पुत्र रत्न हुआ जो सोमराज के नाम से प्रसिद्ध हुये। श्री मुण्डलजी की मृत्यु होने पर चारों स्त्रियाँ विक्रमीय संवत् ११३७ में हुई। सतियाँ मण्डल में हुई। पाल्हुरामजी मण्डाल छोड़ केड ग्राम में बस गये थे। सती पूजन भली-भाँति नहीं हो पाता था अतः मण्डाल के मण्डपों से ४ ईंट प्रत्येक मण्डप की लाई गई। ईटें-भाटों द्वारा मण्डाल से पैदल सिर पर रख कर केड लाई गई और वर्तमान स्थान पर जो कि केड से काटली नदी के पूर्व में है स्थापित कर दी। भाट मण्डाल से एक ब्राह्मणी सती की ईंट भी साथ लाये थे। उस सती का मण्डप भी इन्ही सती स्थान पर बनाया गया। श्री केडिया जातीय सहायक सभा एवं केड नामक संस्था द्वारा वर्तमान में यहां समस्त केडिया भाइयों के आर्थिक सहयोग से विशाल ५ सती मण्डल श्री बजरंग एवं शिवालय का निर्माण हो चुका है। यात्रियों के आवास हेतु २५ कमरे है प्रति वर्ष भादवा कृष्णा ३० अमावस्या को एक मेला लगता है। उक्त स्थान का वर्तमान रूप देने का श्रेय श्री पुष्करलालजी केडिया गुढा निवासी को जाता है जिनके सुझाओं के अनुसार केडिया भाइयों ने इस स्थान पर उक्त निर्माण करवाया। इस पवित्र धार्मिक स्थल की व्यवस्था स्थानीय व्यवस्थापक स्व० श्री मोहनलालजी एवं उनके सुपुत्र श्री आनन्दकरण जी केडिया एवं स्वर्गीय श्री मथुराप्रसादजी एवं उनके सुपुत्र श्री राधश्यामजी केडिया की देखरेख में होती चली आ रही है। केडिया भाई जो समस्त भारत के प्रसिद्ध नगरों एवं ग्रामों में बसे हैं का सकल्प है, कि वे इस स्थान को

अत्यधिक सुन्दर एवं भारतप्रसिद्ध अपने आर्थिक सहयोग एवं धार्मिक भावना के आधार पर बना पावें ।

केड पीर

झुन्झुनू जिले में जैसे नरहड़ का पीर प्रसिद्ध है उसी प्रकार उदयपुरवाटी में केड का पीर प्रसिद्ध है । यह स्थान एक बड़ी इमारत में है इसके पास ही एक बड़ी बावड़ी है जो अब एक ओर से टूट चुकी है । केड के पीरजी के सम्बन्ध में कई प्रकार की जनश्रुतियाँ सुनने में आई हैं । सारांश यह है कि केड से नवाब जवर्दीखाँ का मलामहमद नामक एक भाणजा था, मलामहमद ने विवाह नहीं किया, उसे घोड़े पर चढने का बड़ा शौक था । वह अपने आपको पाकदामन समझता था । किन्तु किसी के ताना मार देने पर मलामहमद ने केड में सं० १५२० वि० में जीवितमट्टी ले ली । पुजारी पीर का नाम "सीरनीमियाँ" बताते है । सुना जाता है कि जीवित-मट्टी लेने के बाद बालकों को सीरनी (बतासा) दिया करता था । शायद इसी से इस पीर का नाम "सीरानीमियाँ" पड़ गया हो । पीरजी की कब्र पर नवाव द्वारा पक्का मकान बना दिया गया, जो अब भी वर्तमान है । पीरजी के स्थान में मुसलमानों तथा केडिया भाइयों ने कई तिबारे तथा रसोइयाँ बनादी हैं । अब दरगाह के सामने संगमरमर का फर्श भी केडियों द्वारा बना दिया गया है । भोलारामजी केडिया के कोई पुत्र नही था । पीरजी के स्थान पर एक टिल्ले पर एक फकीर रहता था । भोलारामजी ने फकीर के पास पहुंच कर पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रकट की । फकीर के वरदान से उनके पुत्र हुआ जिनका नाम हेडराजजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ । फकीर ने शर्त रखी थी कि तुम्हे एक मीठे पानी की कुई बनवानी होगी तथा जन्मे तथा ब्याहे 'सीरनी पीर' की जात देनी होगी । उसी शर्त के आधार पर उन्होंने एक कुई बनवाई जिसको शकरीकुई के नाम से पुकारते हैं । उस समय से लेकर आज तक केडिया भाई चाहे कितनी ही दूर क्यों न रहें जात-जडूला के लिये केड आते रहते हैं । सीरानीमियाँ को पीर हुये २२५ वर्ष हो चुके है । भादवा वदी ८-९ के दिन प्रतिवर्ष मेला भी लगता है ।

वागोरा-सेड माँ

उदयपुरवाटी से ४ किलोमीटर दक्षिण में यह देव स्थान है जहाँ एक पक्का तालाव है यात्रियों के लिये तिबारे एवं कमरे भी हैं। एक पक्का कुआ है शीतलाष्टमी के दिन यहाँ बड़ा मेला लगता है। इस स्थान के पुजारी ग्राम वागोरा के कुम्हार हैं।

नीमका जोडा

यह स्थान उदयपुरवाटी के पूर्व में है यहाँ महामायी का मन्दिर है यहाँ वर्ष भर स्त्रियाँ अपने बच्चों की जात देने निरन्तर आती रहती हैं। यह स्थान इस क्षेत्र का एक विशिष्ट धार्मिक स्थान माना जाता है। वर्तमान समय श्री रामलाल इस स्थान के पुजारी हैं।

उदयपुरवाटी के उपरोक्त स्थान धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तीर्थों का महत्त्व जितना राष्ट्रीय दृष्टि से है उतना ही सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भी है तीर्थयात्रा का बड़ा महत्त्व है। भारतीय सम्पन्न हो या विपन्न प्रतिवर्ष तीर्थाटन के लिये निकल पड़ते है। जागरूक भावना से तीर्थ-यात्रा करने वाले व्यक्ति के मन में ईश्वर के प्रति आस्था और देश के प्रति भक्ति जागृत होती है। भारतभूमि के चप्पे-चप्पे में रामकृष्ण के दर्शन करता हुआ भारत की मिट्टी को पवित्र मानता है। तीर्थयात्रा उसमें अनायास ही सहिष्णुता, सदाचार, मिलनसरिता तथा परोपकार आदि गुणों का विकास होता है। अतः तीर्थों को स्वच्छ सुन्दर बनाने में सहयोग देते हुये इन्हें आध्यात्मिकता रंग में रंगना होगा।

माता तीर्थ

नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुः समम्।
तारणाय हितं यैश्च इहैव च परत्र च ॥

वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः।
माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः ॥

एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह।
एषः पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्मफलं शुभम् ॥

बबाई का गलता : कुण्ड

- गोविन्दराम हरितवाल

बबाई के उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग ३ किमी दूर अरावली पर्वत-माला की उपत्यकाओं के मध्य एक प्राचीन मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर एक मजबूत पत्थरों की दीवार चिनाई की बनी हुई है। इस दीवार को देखने से पता चलता है कि यह मन्दिर अति प्राचीन है।

पहाड़ों की गोद में स्थित इस मन्दिर के पास ही कुण्ड बने हुए हैं। एक बड़ा कुण्ड कुए की भांति है। जिसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। इन सीढ़ियों के द्वारा लोग अन्दर जाकर स्नान करते है। कुण्डों में पानी पहाड़ों से आता है। वर्षा के दिनों में जल का नृत्य देखने लायक है। बारह महीने इस स्थान से पानी बहता है जो लगभग २०० फुट ऊँचाई से झरने के रूप में गिरता है, फिर आगे पत्थरों में कल-कल की आवाज करता हुआ बहता है। तत्पश्चात् ३५ फुट की ऊँचाई से गहराई में झरने के रूप में गिरता है और बाद में २०० फुट तक जमीन ही जमीन में बहता हुआ आगे बहता जाता है। मैं समझता हूं कि पहाड़ों में इस पानी के महत्त्व के कारण ही लोग इस मन्दिर के नाम की बजाय यहां बने हुए कुण्डों के कारण ही इस स्थान को कुण्डों के नाम से जानते हैं। आस-पास के क्षेत्र के लोगों के लिए तो यह स्थान गलता ही बना हुआ है।

पानी की सरसता तथा पर्वतीय प्रदेश होने के कारण यहां की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। मन्दिर के पास ही कई बड (वट) के बड़-बड़े वृक्ष हैं, जिनकी छाया में राहगीर-यात्री, पशु-पक्षी विश्राम कर सकते हैं। मन्दिर के पास ही कई प्रकार के फूलों के पौधे लगे हुए है। आस-पास चारों ओर जंगल ही जंगल है। पर्वत के दूसरी तरफ कुछ गूजर जाति की बस्तियां है।

वर्षा ऋतु में यहां का दृश्य बहुत ही सुहावना होता है। श्रावण मास में प्रति सोमवार को शिव [illegible]

कुण्डों के चारों ओर दूर-दूर तक लकड़ियों के जंगल है। चिरमी, खेजड़ा धो, खैरी, पलाश, साल आदि वृक्षों की अधिकता है। यहां कई प्रकार की औषधियां गूंद तथा डांसर, गगेड़े, खीरखप्प, रडूआ, थोर के पातड़े आदि मेवे भी मिलते हैं, जिनकी प्रवासी नागरिकों में भारी मांग रहती है।

एक किवदन्ती यह है कि यहां पर अनाम अज्ञात संतों के नाम से यदि कोई व्यक्ति अपने श्रद्धासुमन आवाज लगाकर अर्पित करता है तो बदले में उसका जवाब भी सुनाई पडता है जो इस स्थान के लिए अति महत्त्व को प्रदर्शित करता है।

ब्रह्मचर्य तीर्थ

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सवभूतदया तीर्थं तीर्थं मार्जवमेव च ॥

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

गुरु तीर्थ

दिवा प्रकाशकः सूर्यः शशी रात्रौ प्रकाशकः।
गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकरः सदा ॥

रात्रौ दिवा गृहस्यान्ते गुरुः शिष्यं सदैव हि।
अज्ञानाख्य तमस्तस्य गुरुः सर्वं प्रकाशयेत् ॥

तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनीयते।

पति तीर्थ

मध्यं पादं स्वयंतुष्ट प्रयागं विद्धि सत्तम्।
वाम च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत् ॥

तस्य पादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः ॥

सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यमयः पतिः ॥ — (कल्याण)

खेतड़ी और निकटवर्ती तीर्थस्थल

- हनुमत्प्रसाद मिश्र शास्त्री, खेतड़ी

'तीर्थं योनौ जलावतारे च' इस कोष के अनुसार तीर्थ माता-पिता हैं, गुरु है, और जितने भी पूज्य शिक्षादेनेवाले हैं सब तीर्थ शब्दवाच्य ही हैं। इस गहन संसार-जलाशय में सीढी दर सीढ़ी प्रवेश करादेनेवाले सभी तीर्थ हैं। यों तीर्थ पवित्र जल-प्रवाह की संज्ञा है।

खेतड़ी के समीपवर्ती तीर्थों की कथा इस प्रकार है—

गणेश्वर

पूर्व में इसके गणेश्वर है। यहाँ गरम जल की गंगा निरन्तर बहती है। अपने प्रथमादि गुणोंसहित भगवान् शंकर यहाँ के अधिष्ठाता हैं। इसी कारण गणेश्वर कहलाया।

बलेश्वर

इसी पर्वतीय शृंखलाओं में आचार्य द्रोण द्वारा स्थापित बलेश्वर महादेव है। इस लिंग को सींचती हुई सुरसरी यहाँ भी बह रही है जो दूर दूर तक पत्थरों में फूल खिलाती है। ये ३२ गाँव, जहाँ बलेश्वर की गंगा बहती है, राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को भेंट में देकर अपना अपराध क्षमा करवाया था। अपराध यह था अचार्य एक बार ब्राह्मणसुलभ दरिद्रय के सताये अपने मित्र (एक पाठशाला में पढते थे) के भिक्षा लेने गये थे तो द्रोण को यह कहकर कि राजा और भिक्षुक की कहाँ मित्रता है राजसभा में घुसने नहीं दिया था।

बाघेश्वर

उत्तर में खेतड़ी से बाघेश्वर नाम का तीर्थ है महाभारत में इसको वधुसर कहा है। यह महर्षि च्यवन की जन्मभूमि है। किसी राक्षस के डर से भागती हुई माता के उदर से यहाँ च्यवनजी चू पड़े थे। बालक के गिर जाने से माता रोयी तो अश्रुपात से नदी बह चली। यह नदी १२ कोष तक बहती है। इसी

को वाघेश्वर भी कहते है जो बघूमर का ही अपभ्रंश समझिये।

खेतडी से पश्चिम की ओर लोहार्गल तीर्थ है इसका वर्णन अलग से लिखा है।

अमरकुण्ड

दक्षिण दिशा में इसके अमरकुण्ड नामक तीर्थ है। यह महात्मा अमरनाथ-जी की तपोभूमि है। गाय और गोपालों पर कृपा करके अपने चिमटे से एक चट्टान को उखाडकर यह तीर्थ निर्माण किया। पता नही कितने वर्षों से अमर-कुण्ड की गंगा अमर हो रही है। पर्वत-शृंखला को पार करके गंगा जैसे हरिद्वार में वैसे ही मैदान में बहती है।

झोझू

दक्षिण दिशा में ही "झोझू" नामका एक तीर्थ है। यहाँ उत्तरवाहिनी गंगा है शास्त्रों में उत्तरवाहिनी गंगा को परम पवित्र माना गया है। यहाँ सिद्ध सन्त बाबा गंगा गिरि की समाधि है। जिस पर भगवान् शंकर का भव्य भवन और तीर्थजलसिंचित एक बगीचा है जिसके फल साधु-सन्त और आगंतुक भक्त निःशुल्क प्रसाद के रूप में पाते हैं।

साँभरा

इसी दिशा में वाघोर दुर्ग के पर्वतीय क्षेत्र में साँभरा नामक तीर्थ है। यहाँ बाबा मक्खनदासजी ने चिरकाल तक तपस्या की थी। पहिले यह तीर्थ कूपाकृति था परन्तु बाबा ने इसको अपनी तपः शक्ति से प्रवाहित कर दिया। प्रतिवर्ष यहाँ हजारो तीर्थ प्रेमी पाप से मुक्त होते हैं।

(युधिष्ठिरजी ने विदुरजी से कहा था)

भक्त तीर्थ

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभोः।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः गदाभृता॥

सीकर और उसके धार्मिकस्थल

- भंवरलाल सेठी

विभूतियों की जन्मभूमि -

इस जनपद की यह विशेषता रही है कि यहां के नररत्न समय-समय पर भारतीय नक्षत्रमंडल में राजनीति, साहित्य एवं उद्योग आदि क्षेत्रों में प्रकाशमान होते रहे हैं। स्वतंत्रतासंग्राम के अमर सेनानी एवं भामाशाह सेठ जमनलाल बजाज की जन्मभूमि होने का गौरव जहां इस धरती को है वहां अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लेनेवाले और गरीबों के हिमायती डूंगजी-जवाहरजी और बलजी-भूरजी की वीरगाथायें आज भी गांव २ में सुनने को मिलती हैं। सुप्रसिद्ध लोकप्रिय कवि कृपारामजी जिनके सोरठे एवं दोहे जो उन्होंने अपने सेवक 'राजिया' को संबोधित कर लिखे थे, जन-जन की वाणी में ओतप्रोत हैं। महाकवि सुन्दरदास जैसे प्रतिभाशाली साहित्यकार सीकर की ही देन हैं जिनके काव्य का दिग्दर्शन और समालोचन आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ सुन्दरग्रंथावली में किया है।

फतहपुर कायमखानी राजवंश के नवाब दौलतखां और ताजखां अपने समय के प्रसिद्ध साहित्यसर्जक थे जिन्होंने संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी में सैंकड़ों ग्रन्थों की रचना की थी। फतहपुर के महात्मा बुद्धगिरि, स्वामी कृष्णदास एवं जैन पं० महाचंद सीकर के सुप्रसिद्ध सन्त शिरोमणि कवि थे जिनकी रचनायें भजनों के रूप में आज तक प्रचलित हैं।

पुरातत्व

सीकर से ७ मील दक्षिण में हर्ष नामक ग्राम है जो हर्षनाथ नाम की ३१०० फीट ऊंची पहाड़ी की तलहटी में बसा है। यहां पर चतुर्धारा (चार धाराओं का संगम) नामक एक स्थान है जो इस भाग में (जैसलमेर बीकानेर और जयपुर डिविजन के ...

हर्षनाथ की पहाड़ी पर प्राचीनकाल में ८४ मन्दिर स्थित थे, ऐसी किम्वदन्ति प्रचलित है। यहां के प्राप्त मनोहर कोरणीयुक्त पत्थर और मूर्तियां आजकल सीकर, जयपुर और अजमेर के संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं इनमें वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियों का आधिक्य है। जैनमूर्तियां भी यहां प्राप्त हुई हैं जिनमें से कुछ तो संग्रहालयों में हैं और अवशेष चौबीसी एक सुन्दर पट्ट, एक लेखरहित दो फीट ऊंची तीर्थंकर मूर्ति और एक कलापूर्ण वेदीद्वारा आज भी सीकर स्थितबड़ा जैनमन्दिर में विद्यमान हैं। हर्ष ग्राम में भी सुन्दर परिकर-युक्त एक गज ऊंची भ० अजितनाथ की पद्मासन-प्रतिमा है जो 'भैरूंजी' के नाम से पूजी जाती है।

प्रतीत होता है कि मध्यकाल में यह स्थान वैदिक एवं जैनविचारधारा का अच्छा केन्द्र था जैसा कि ग्राम के पूर्व-दक्षिण में प्राप्त प्राचीन दीवारों से ज्ञात होता है। वर्तमान में पहाड़ी पर गगनचुम्बी शिखरवाला एक शिवमन्दिर यहां के राव राजा शिवसिंह (१७३८-१८०५) विक्रम सं० का बनाया हुआ है जो अनुपम स्थापत्यकला का परिचायक है। खुदाई का काम पर्याप्त आकर्षक है। छत, तोरणद्वार और स्तम्भों का शिल्पभास्कर्य प्रेक्षणीय है। इसी पहाड़ी पर वि० संवत् १०३० का चौहान राजा विग्रहराज द्वि० का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो अब सीकरस्थित संग्रहालय में है।

दर्शनीय स्थल शाकम्भरी

सीकर से ३४ मील पूर्व में शाकम्भरी देवी का मन्दिर है जो जनसाधारण में सकराय माता के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक प्राचीन स्थान है। यत्रस्थ प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार संवत् ७४९ में इस मन्दिर का निर्माण हुआ और महाधिराज श्री दुर्लभराज के राज्य में श्री शिवहरि के पुत्र तथा भतीजे सिद्धराज ने यहां शाकम्भरी का मंडप बनवाया। कालोत्तर में संवत् १९७२-१९८० में नवलगढनिवासी रामगोपाल भूरामल ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार

पहाड़ों से घिरा यह स्थान प्रकृति की क्रीड़ास्थली है यहां आम के वृक्षों की बहुलता है। मन्दिर के पिछले भाग में जल के सात कुण्ड बने हुए है जिनमें वर्ष भर एक के पश्चात् दूसरे, तीसरे और इस प्रकार सात कुण्डों को पार करती हुई जलधारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। पास ही एक बांध बना हुआ है जिससे आस-पास में सिंचाई होती है। स्थान अत्यन्त ही रमणीय है और वर्षा ऋतु में हजारों नरनारी यहां के प्रकृति दृश्यों का आनन्द उठाने, आते रहते है। यहां वर्ष में दो बार चैत्र और आश्विन शुक्ला में मेला भरता है। दर्शनार्थी एवम् पर्यटकों के आवास हेतु यहां अच्छी धर्मशालाएं हैं।

जीणमाता

सीकर से १४ मील दूर जयपुर-सीकर रेलपथ पर गोरियां स्टेशन से आठ मील यह स्थान पक्की सडक से जुड़ गया है। अरावली पर्वतमाला की शृंखला से तीन ओर से घिरा जीणमाता का यह मन्दिर एक प्राचीन धर्मस्थान है।

यहां वर्ष में दो बार नवरात्रि मे चैत्र एव अश्विन के शुक्ल पक्ष में, मेले भरते है जिनमें देश के विभिन्न प्रान्तों से हजारों की संख्या में लोग आते हैं। शेखावाटी क्षत्र के प्रवासी कोने-कोने से जात देने एवं बच्चों का मुण्डनसंस्कार करने जीणमाता के आते रहते है। दर्शनार्थियों के ठहरने के लिये बडी संख्या में तिबारे और धर्मशालाए बनी हुई हैं।

प्राप्त शिलालेखों के आधार पर इस धर्मस्थली के ऐतिहासिक महत्त्व भी है। जीण-माता के मन्दिर के खम्भों पर चौहान राजाओं से सम्बन्धित कई लेख मिले हैं जिनसे इसका निर्माणकाल १० वीं शताब्दी माना जाता है। ऐसा-लगता है कि हर्षनाथ और जीणमाता उस समय शैवों और पाशुपतों का एक प्रमुख केन्द्र था और निर्माण की दृष्टि से इन मन्दिरों का आपस में सम्बन्ध रहा है। मुगल सम्राट् भी जीणमाता के चमत्कार से प्रभावित हो सदा यहां दीपक के लिए घृत और नगारे भेजते रहे हैं। यत्रतत्र प्राप्त प्राचीन नगारे आज भी इस बात के साक्षी है।

श्यामजी (खाटू)

सीकर से ३० मील ग्राम खाटू में यह देवालय है। यहां श्यामजी (कृष्ण) का मन्दिर है। जीणमाता की तरह श्यामजी खाटू में भी लोग दूर २ से मनौती मनाने, जात देने एवं बच्चों के मुण्डनसंस्कार के लिए आते हैं। वर्ष में एक बार फाल्गुन शुक्ला १२ को यहां मेला भरता है। इसके स्थापनाकाल के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य तो उपलब्ध नहीं है पर एक जनश्रुति है कि खाटूग्राम के निवासी को श्यामजी ने स्वप्न में कहा कि वे खाटू की बावडी में मिट्टी के नीचे हैं उन्हें निकाला जाये। कहते है कि बावड़ी की मिट्टी निकालने पर मूर्ति प्राप्त हुई, उसी की पूजा की जाती है। मन्दिर का जीर्णोद्धार कुछ वर्ष पूर्व किया जाकर आधुनिक रूप दिया गया है और दर्शनार्थियों को समस्त आवासीय सुविधाये उपलब्ध है।

गणेश्वर

नीमकाथाना से ५ मील गणेश्वर पचायत मुख्यालय है जो सीकर से ६१ मील दूर है। गणेश्वर में उष्ण जल का स्रोत है। उष्ण जल संगमरमर के गौमुख से होकर एक कुण्ड में निरन्तर बहता रहता है जिसमें लोग स्नान करके पुण्यलाभ करते है। यह कुण्ड तीर्थ माना जाता है।

रेवासा जैन मन्दिर

सीकर से लगभग १६ किलोमीटर दूरी पर स्थित यह रैवासा ग्राम आदिनाथ के जैन मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। यहां प्रचलित एक किंवदन्ति के अनुसार कुछ यक्ष इस मन्दिर को लिए अन्यत्र उड़े जा रहे थे किंतु जब वे इस ग्राम के ऊपर से गुजर रहे थे तब यत्रस्थ एक संत ने उन्हें कील दिया और उन यक्षों को यह मन्दिर यही स्थापित करना पड़ा। किन्तु यहां प्राप्त संवत् १६६१ के एक शिलालेख के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण साह जीतमल एव नथमल ने करवाया था जो महाराजाधिराज रायसल के मन्त्री श्री देवीदास के पुत्र थे।

झीलों की नगरी उदयपुर के धार्मिक स्थल

दर्शनीय स्थल

विश्व मानचित्र में कतिपय ही ऐसे स्थान हैं जहां प्रकृति ने उन्मुक्त रूप से सौन्दर्य बिखेरा है। अरावली की सुरम्य गोद में बसा उदयपुर जिला पर्यटन के राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का स्थान है। ऐतिहासिक अतीत, भौगोलिक विशिष्टता, रमणीय प्राकृतिक सौंदर्य, अनुपम सांस्कृतिक परम्परा, स्थापत्य कला एवं धार्मिक महत्व के कारण उदयपुर की पवित्र भूमि पर्यटकों के लिये आकर्षण व श्रद्धा को केन्द्र बनी हुई है।

जगदीश मन्दिर

महलों के मुख्य द्वार से लगभग १७५ गज की दूरी पर जगदीश मन्दिर स्थित है। इसका निर्माण महाराणा जगतसिंह ने १७ वीं शताब्दी में लगभग १५ लाख रुपये की लागत से करवाया था सड़क से २५ फुट ऊंचे प्लेट फार्म पर बने इस ८० फुट ऊंचे मन्दिर की वास्तु कला प्राचीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता ज्ञान विज्ञान और धर्म को मूर्त रूप से प्रतिबिम्बित करती है। मन्दिर के गर्भ गृह तक जाने के लिये ३२ सीढ़ियां बनी हुई हैं जहां काले संगमरमर से से निर्मित भगवान विष्णु की भव्य मूर्ति विरामान है। गर्भ गृह के सामने गरुड़ की एक विशाल पीतल की मूर्ति है।

श्री एकलिंगजी का मन्दिर

उदयपुर से उत्तर की ओर लगभग २० कि०मी० की दूर नाथद्वारा जाने-वाली सड़क पर स्थित इस मन्दिर के चारों ओर व्याप्त पहाड़ियों की छटा वर्षा ऋतु में अत्यधिक रमणीय हो जाती है। मन्दिर के पास छोटी सी बस्ती जिसे कैलाशपुरी कहा जाता है। इस मन्दिर का निर्माण गुहिल वंश के प्रमुख वंशधर बाप्पा रावल ने कराया था। यहां भगवान शिव की चौमुखी मूर्ति है। मन्दिर की स्थापत्य एवं निर्माण कला देखते ही बनती है। पास ही कुछ ऊंचे भाग पर लकुलीस का प्रासाद है जो प्राचीनता की दृष्टि से बहुत महत्त्व

है। चांदनी रात में इन्द्र सरोवर का नीर उसमें उगने वाले कमल और कुमुदनी के संगम से बड़ा सुहावना दृश्य दिखाई देता है। महाराणा राजसिंह और जयसिंह ने विशेष प्रयत्न करके इनका जीर्णोद्धार कराया था।

नागदा मन्दिर

एकलिंगजी मन्दिर से लगभग २ मील पश्चिम में नागदा के मन्दिर हैं जिन्हें सास बहू के मन्दिर भी कहते हैं। ये मन्दिर आजकल भग्नावशेष अवस्था में हैं। कहा जाता है कि नागादित्य नामक राजा ने छठी शताब्दी में नागदा नगरी को मेवाड़ की राजधानी के रूप में बसाया था। मुगलों के आक्रमण से खण्डित हुई मूर्तियां आज भी उस समय की स्थापत्य कला की साक्षी हैं।

नाथद्वारा

बनास नदी के दक्षिणी किनारे पर बसा यह सुन्दर नगर उदयपुर से लगभग ४५ कि०मी० उत्तर में राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या ८ पर स्थित है श्रीनाथ भगवान् के नाम पर ही इसका नाम नाथद्वारा पड़ा है। यहां बने श्रीनाथ का मन्दिर उत्तरी भाग में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिरों में गिना जाता है। काले पत्थर की विशालकाय आदम कद विष्णु मूर्ति की छवि अत्यधिक मनोहारी है। औरंगजेब द्वारा हिन्दू धर्म, संस्कृति और समाज पर लगातार किये गये आक्रमणों एवं अत्याचारों से इस पवित्र मूर्ति को बचाने के लिये मथुरा से निकलकर वल्लभाचार्य के वंशज जब राजपूताने के किसी भी रजवाड़े में स्थान नहीं पा सके तो ऐसे समय में सन् १६७२ में मेवाड़ के राणा राजसिंह ने श्रीनाथ भगवान् की मूर्ति की रक्षा का भार अपने ऊपर लेते हुए नाथद्वारा में इसकी स्थापना कराई। यह मन्दिर अपने ऐश्वर्य धन-दौलत और भोग की स्वादिष्ट सामग्री के लिये प्रसिद्ध है भारतीय चित्रकला के इतिहास में नाथद्वारा शैली का अपना विशिष्ट स्थान है। चांदी के आभूषणों और बर्तनों आदि पर दक्ष मीनाकारी यहां की विशेषता है। राजस्थान ही नहीं बल्कि आसपास के राज्यों के लाखों श्रद्धालुओं की श्रद्धा का यह केन्द्र है।

राष्ट्रीय राज मार्ग संख्या ८ पर ही नाथद्वारा से लगभग १८ कि० म० उत्तर में प्रसिद्ध राजसमन्द झील के पास बसा हुआ कांकरोली नगर भी अपने विष्णु मन्दिर के लिये प्रसिद्ध है। द्वारकाधीश की भव्य प्रतिमावाले मन्दिर का निर्माण १६७१ में राणा राजसिंह ने करवाया था। १६७२ में राजसमन्द झील के साथ ही इस मन्दिर का उद्घाटन हुआ। झील के किनारे पर बनी संगमरमर की छतरियां और तोरण द्वारा भारत की उत्कृष्ट और प्राचीन वास्तु कला के कौशल का जीता जागता प्रमाण है। ४ मील लम्बी और डेढ़ मील चौड़ी तथा ५५ फुट गहरी इस झील को बनाने में उस समय ३६ लाख ६५ हजार रुपया खर्च हुआ था।

उदयपुर से ५६ कि० मी० की दूरी पर कुरावड कस्बे के समीप जगत गांव में स्थित कलात्मक मातृ का मन्दिर वाह्य स्तरों पर उत्कीर्ण मानव कृतियों और कठोर प्रस्तर मे सूत्रधार की छेनी द्वारा उत्पन्न की गई कला खजुराहों की कला की समता करने के लिये बाध्य करती है। जगत की शिल्प कला मेवाड़ी कला के गौरव की सामग्री है।

दिल्ली-अहमदाबाद राज मार्ग पर उदयपुर से ६० कि०मी० दूर स्थित श्री केसरयाजी तीर्थ स्थान सम्भवत: भारत के उन गिने चुने मन्दिरों में है जहां केवल वैष्णव जन अथवा भील और गरासिया ही नहीं मुसलमान भी एक सीमा तक मन्दिर में प्रवेश कर भक्ति भाव में लीन हो जाते हैं। इस मन्दिर में भगवान् ऋषभदेव की केसर से ही पूजा होने पर यह तीर्थ स्थान केसरयाजी के नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर का निर्माण वि० सं० १४३१ से १८६३ तक होता रहा। मन्दिर में ऋषभदेव की ३ फुट लम्बी प्रतिमा लगभग एक फुट ऊचे पावासन पर विराजमान है जिसके नीचे सिंह देव आदि की सर्वधातु की मूर्तिया है। दोनो ओर खड्गासन लगाये दो तीर्थंकरों की प्रतिमाये है। निज मन्दिर के चारों ओर ५२ जिनालय है।

मूलत: जैन मन्दिर होते हुये भी इस मन्दिर में सरस्वती, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, भैरव व दुर्गा आदि की मूर्तियां प्रतिष्टापित हैं। इस मन्दिर के दर्शनार्थ दूर-दूर से यात्रीगण आते हैं। उपरोक्त विभिन्न रमणीय, ऐतिहासिक एवं नैसर्गिक सौन्दर्य तथा कलात्मकता से भरपूर, दर्शनीय स्थानों के कारण ही उदयपुर राजस्थान का काश्मीर कहलाता है। समय-समय पर कवियों, साहित्य-कारों व ज्ञानपिपासुओं के लिये यह नगर प्रेरणा का स्रोत रहा है। पर्यटकों को आज भी यह झीलों की नगरी अपने समस्त नूतन और पुरातन शृंगार के साथ मुक्त भाव से निमंत्रण देती है।

गागरोन के मिट्ठेशाह महावली

मानवता को सेवा और बन्धुत्व की भावना एवं सांस्कृतिक एकता का सन्देश संतों के माध्यम से विश्व में प्रसारित करने के लिए प्रारम्भ से ही हिन्दुस्तान की धरती अग्रणी रही है। संतों की इस शृंखला में गागरोन के हजरत ख्वाजा सैयद हमीदुद्दीन चिश्ती खुरासानी उर्फ गागरोनी मिट्ठे महावली का नाम भी जुड़ा हुआ है।

झालावाड़ से लगभग १६ कि० मी० दूर आहू व काली सिन्ध नदी के सगम पर बसा हुआ गागरोन ग्राम व आस पास का क्षेत्र उनकी कर्मस्थली रही। सरिताओं के संगम के एक किनारे पर जहां उनकी याद में बनायी गयी दरगाह पर श्रद्धालु भक्त प्रति वर्ष उर्स के अवसर पर अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं वहां दूसरी ओर रामानुज सम्प्रदाय के संत शिरोमणि पीपाजी महाराज का मठ एव समाधिस्थल भी स्थित है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह अनुपम एव अद्वितीय उदाहरण देशवासियों को विश्व बन्धुत्व का सन्देश वर्षों से प्रसारित करता आ रहा है। विधि का विधान भी यहां देखते ही बनता है। जहां एक ही स्थल पर एक साथ दो नदियां मिलती हैं वहां दो धर्मावलम्बी संतों की समाधियां और दोनों का ही समकालीन होना ऐसा प्रतीत होता है मानो गंगा और जमुना के स्वभावसिद्ध मिलन से यहां का जनजीवन ही धन्य हो गया हो।

कभी जहां जंग के दौरान लोहे से लोहा टकराता था, दो दलों में घृणा का दावानल भड़क उठता था, आज वहां सभी संप्रदायों के अनुयायी दिल जोड़कर आस्ताने पर हाजरी देते है।

मिट्ठेशाह के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में यद्यपि विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है किन्तु फिर भी ऐसी मान्यता है कि आपके नाम के साथ जो खुरासानी शब्द जुडा हुआ है वह आपकी जन्मस्थली एवं गागरोनी · · है जो आपकी कर्मस्थली का द्योतक है। आपका पूरा नाम सैयद

हमीदुद्दीन व वालिद का नाम सैयद अजीजुद्दीन था। ये अरब से खुरासानी ग्राम कन्नोज के रहने वाले थे। अपनी शैशवावस्था से ही ईश्वरपरायण होने के कारण आप अपनी सैनिक वृत्ति को भरी जवानी में छोड़कर ईश्वरीय मार्ग के अनुयायी बन गये। बाद का सारा जीवन आपने मानवसेवा में लगाया। आपके प्रथम गुरु खुरासान के अलाउद्दीन थे।

जीवन को इस जटिल एवं दीर्घ यात्रा के बाद आपका साक्षात्कार ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी से होना आपके जीवन का उज्ज्वल पक्ष है, जिनकी निस्बत पाकर आपका जोवन इन्सानी सेवा का चमत्कारी दर्शन है। आपके सादा, आडम्बरविहीन एवं मृदु व्यवहार से प्रसन्न होकर ख्वाजा साहब ने आपको मालवा के सुल्तान की उपाधि से विभूषित किया और गागरोन की चौको अता की।

तवारिखी ऐतबार से आप सूफी चिश्ती घराने के तेहरवें खलीफा थे। आप अपने व्यवहार और मधुर वाणी के कारण भक्तों में मिट्ठेशाह के नाम से जाने जाते हैं।

अजमेर शरीफ से गागरोन के लिये रवाना होकर मार्ग में आपने जहां-जहां भी खुदापरस्ती की वहां आज भी आपके नाम के नजराने पेश किये जाते हैं। इन स्थानों में एक उल्लेखनीय स्थान खेराबाद एव भीमसागर पर मिट्ठे साहब की बारी है। गागरोन पहुंच कर आखिरी वक्त तक आप वहीं रहे और यहीं पर आपने इन्सानियत की खिदमत एव खुदापरस्ती का कार्य किया। आपके करामातो और नेक कार्यो से इस क्षेत्र के लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

आपके जीवनकाल में ही आपके मजारे अकदस का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया। गुम्बज का शेष निर्माण कार्य मान्डू के बादशाह गोरी ने पूरा करवाया। निर्माणकार्य हजरत के निर्देशानुसार ही चांद नामक कारीगर द्वारा किया गया। निर्माणकार्य के दौरान ही कारीगरों में मिट्ठे साहब से निवेदन किया की हुजूर वहां आपकी ऐसी यादगार होनी चाहिये जिससे यहां

आने वाले यात्री उस करामात का अहसास कर सकें। अत. आपने एक छतरी के हाथ लगाया जिससे वह हिलने लगी। आज भी उसे यदि हिलाया जाए तो हिलते हुए देखा जा सकता है।

हजरत मिट्ठेशाह के बारे में एक मान्यता है कि इनसे द्वेष रखने वाले जादूगरों ने एक बार जादू के जोर से पत्थर की भारी शिला उन पर फेंकी किन्तु आपने इसे अपनी आन्तरिक शक्ति से रोक दिया। यह शिला आज भी गागरोन गांव के पास एक खेत में गडी हुई है। इस शिला के दरगाह की तरफ देखते हुए हिस्से को हाथ से रगड़ने पर खुशबू और दूसरी ओर रगडने पर दुर्गन्ध महसूस होती है।

आपके बारे में एक मान्यता यह भी है कि आपके विरोधियों ने आपको एक दावत में बुलाया और खाने में जहर मिलाकर दिया। जब आप दावत से वापस आ रहे थे तब काली सिन्ध के किनारे उबाक के साथ उल्टी हो गयी। जहां उल्टी हुई वह पत्थर नीला हो गया। आज भी लोगों की यह धारणा है कि यदि इस पत्थर को घिस कर उल्टी के मरीज को दिया जाये तो मरीज स्वस्थ हो सकता है।

मुख्य गुम्बज के नीचे लाल पत्थर की आपकी कब्र मुबारक बनी हुई है जिसके चारों ओर शीशम की लकडी की नक्काशीदार जाली लगी हुई है।

दरगाह की वास्तुशैली हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित शैली का उत्कृष्ट नमूना है। दरगाह के दरवाजे की दाहिने ओर दीवार पर लगा हुआ शिलालेख जिसकी लिपि फारसी है—में गुम्बज एव उनके निर्माता का नाम मियां मुअज्जम तथा मियां बजहीन बहलमी और निर्माण काल हिजरी संवत् ७५० जिल्हिज संवत् विक्रमी १४०७ अंकित है।

दूसरा शिलालेख बीकानेर के कल्याणमल राठौड़ के पुत्र सुल्तानराय तत्कालीन हाकिम गागरोन के समय हिजरी संवत् ९८७ विक्रम संवत् १६३१ में उल्लीखां के पुत्र मियां ईसा द्वारा दरवाजा बनाया जाना अंकित है। इसी प्रकार तीसरा शिलालेख हिजरी संवत् ९९१ विक्रम संवत् १६४० का देखने में

आया है, जिसे भी उपरोक्त हाकिम सुल्तानराय के समय का माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि दरगाह का गुम्बज तत्कालीन उल्लीखां के पुत्र मियां ईसा जो थानेश्वर का निवासी था के द्वारा निर्मित हुआ।

दरगाह में प्रवेश के लिए एक विशाल बुलन्द दरवाजे में से गुजरना होता है जिसे औरंगजेब द्वारा अपनी यात्रा के दौरान बनवाया गया था। दरगाह में मिट्ठे साहब के हाथ से लिखा हुआ कुरान शरीफ तथा हाथ की छड़ी आदि भी मौजूद हैं, जिनके दर्शन दस मोहर्रम को कराये जाते है।

यहां विशाल चार देगें भी मौजूद हैं, जिनमें से सबसे बड़ी देग कोटा के महाराव रामसिंह द्वारा भेंटस्वरूप दी गयी। वर्तमान में उर्स के अवसर पर तीन दिन तक एक-एक देग चढायी जाती है जिसमे जायरीन द्वारा अपनी श्रद्धा से राशि, जेवरात आदि डाले जाते हैं। पूर्व में देग भक्तों द्वारा लूटी जाती थी किन्तु अब प्रसाद वितरण किया जाता है।

वक्फ कमेटी दरगाह के सद्प्रयासों के फलस्वरूप ७ कि० मी० की सड़क दरगाह तक बनायी गई है। जायरीन की सहूलियत के लिए दरगाह के आस-पास हैण्ड पम्प तथा राजकीय डिस्पेंसरी की भी स्थायी व्यवस्था की जा चुकी है। जायरीन को गागरोन तक पहुंचाने के लिए राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम द्वारा भी बसों की समुचित व्यवस्था की जाती हैं।

मिट्ठशाह की वफात माह मोहर्रम की दसवी तारीख को हुई। इस दिन आपके मुरीद गुसल अदायगी की रस्म में शामिल होते है।

इसी सिलसिले में माहे मोहर्रम की पहली तारीख से उर्स लगता है। उर्स की शुरुआत चांद की रात को तिलावते कुरआन व चादर चढाकर मीलाद शरीफ से होती है। पहली व दूसरी मोहर्रम को बाद नमाज फजर कुरआन ख्वानी व इसके बाद फातेहा दरूद फुकराये कलन्दरी, बनिआजे आम मय रंग व फुल, फातेहा देग व रात्रि में महफिले कव्वाली आदि का भी आयोजन किया जाता है।

शहंशाहों के शहंशाह ख्वाजा मुइनुद्दीन

- देवीसिंह नरूका

मिर्जा वहीउद्दीन बेग के शब्दों में ख्वाजा साहेब की दरगाह कोमी एकता का सदाबहार सरचश्मा है। ईसा की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्थापित अजमेर नगर में न जाने कितने राजा, महाराजाओं और शंहशाहों के दरबार लगे और उजड़ गये किन्तु शंहशाहों के शंहशाह ख्वाजा मुइनुद्दीन हसन चिश्ती का दरबार आज भी उसी शान शौकत से जगमगा रहा है। प्रति वर्ष देश विदेश के हजारों लोग आकर सूफी संत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (११४२-१२३३ ई०) की मजार पर श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को धन्य समझते हैं।

वास्तव में ख्वाजा साहेब की दरगाह की मान्यता बादशाह अकबर के जमाने से अधिक हुई। सन् १५७०-८० में वह आगरा से अजमेर तक पैदल चलकर जियारत करने यहां आये थे। इस सम्बन्ध में बादशाह जहांगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजके जहांगीरी' में लिखा के, मेरे पिता की २८ वर्ष की आयु तक उनका एक भी बालक जीवित नहीं रहा था और वे पुत्र प्राप्ति की कामना से दरवेशों तथा औलिया की बराबर दुआएँ मांगा करते थे जिनका खुदा ताला के दरबार में रुहानी नजदीकी हासिल है। चूंकि बुजुर्गवार ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती हिन्दुस्तान के अधिकतर औलियाओं के सरचश्मा थे अतः उन्होंने यह सोचा अपनी मुराद पूरी करने के लिए उन्हें ख्वाजा साहेब के पाक आस्ताने का आसरा लेना चाहिए और उन्होंने अपने मन में यह संकल्प किया कि अगर परवर दिगार ने उन्हें एक पुत्र बख्शा तो वह इनकसारी के साथ आगरा से उनके मुतबरिक रोजे तक जायेंगे जो कि १४० कोस के फासले पर है।

'आइने अकबरी' के अनुसार सन् १५६१ से १५६८ ई० तक तीन वर्ष अजमेर में रहे। इस अवधि में उन्होंने नौ बार ख्वाजा साहेब की जिया-

रत की। अपने पिता की भांति बादशाह जहांगीर ने भी दरगाह में तबरुके पकाने के लिए एक देग (बड़ा कड़ाह, भेंट की।

संगमरमर की इमारतें बनवाने के शौकीन बादशाह शाहजहाँ ने अजमेर में आनासागर के किनारे बारादरियों के निर्माण के अलावा ख्वाजा साहेब की दरगाह में सफेद संगमरमर की खूबसूरत विशाल मस्जिद बनवाई जो शाहजहाँनी मस्जिद कहलाती है।

बादशाह शाहजहाँ की बेटी बेगम जहांआरा गरीब नवाज ख्वाजा मुइनु-द्दीन चिश्ती की मुरीद थी। मजारे शरीफ के मुख्य दरवाजे के बाहर उन्होंने एक सुन्दर कारीगरीपूर्ण दालान बनवाया जो बेगमी दालान कहलाता है। इसी दालान में अमृतसर के गुरुद्वारे से प्राप्त विशाल झाड लगा हुआ है। बेगम जहांआरा ने उनके द्वारा लिखी पुस्तक 'मोनेसुल अरवाहे' में लिखा है, कई पीर गुजरे किंतु आप जैसा कोई पीर पैगम्बर मोहम्मद के बाद नहीं हुआ। यहां से कोई भी मुराद खाली लेकर नहीं लौटा, चाहे वह दुनियावी हैसियत से हो अथवा अन्य किसी वजह से। – जो चीज २६ रोज के अर्से में हुजरे के पास में रहकर मैंने देखी उसके बाद मेरे में जो तब्दीली पाई वह बयान नहीं की जा सकती। यही वह वजह थी जिसके कारण मुझे यहां रहने को मजबूर होना पड़ा, जिससे यहां रह कर मैं मजारे मुबारक का व खिदमत अंजाम दे सकूं।

जयपुर के संस्थापक महाराजा सवाईसिंह ने सन् १७३० ई० में ख्वाजा साहेब की मजार के चारों ओर चांदी का कटहरा बना कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की इसमें ४२, ६६१ तोला चाँदी का उपयोग किया गया।

राजस्थान में अजमेर ही ऐसा स्थान है जहां राष्ट्रपति का तीन बार पदार्पण हुआ। प्रदेश के अन्य जिलों के किसी भी कार्यक्रम में उन्होंने भाग नहीं लिया। सन् १९२२ में जमीयतुल उलेमा की अजमेर में आयोजित कॉन्फ्रेंस में यह प्रस्ताव पारित कर दिया गया था कि इस्लाम को यह पसं... और इन्साफ की हिफाजत के लिए तलवार उठाने में जायज होगा। ...

ने दरगाह में आयोजित बैठक में कांफ्रेंस के नेताओं को समझाया और उन्होंने गांधीजी को वचन दिया कि वे अहिंसा का पालन करेंगे।

सन् १९२२ में ही अक्टूबर माह में गांधीजी के जेल में रहने के समय माता कस्तूरबा अजमेर मेरवाड़ा की राजनीतिक कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए यहां आई। यहा की सभा में राष्ट्रमाता 'बा' ने कहा, आपका नगर एक ऐसे महान् मुसलमान साधु का स्थान है जिन्होंने सबसे पहले हिन्दुस्तान में पाव रखा और जिन्हें हिन्दू और मुसलमान बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनकी छाया के नीचे यहां हिन्दू और मुसलमानों की एकता को मैं बहुत महत्वपूर्ण मानती हूं। यह स्थान तो ऐसा है कि यहां की हिन्दू-मुस्लिम एकता सारे भारत के लिए नमूना होनी चाहिए।

वर्ष १९८० के मार्च माह के मध्य में प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने दरगाह की जियारत की। उस समय दरगाह की शाही चौकी के कव्वालों ने उनका स्वागत करते हुए फारसी मे कव्वाली पेश की, बतुंकी महफिले शहाना मुबारक अर्थात आपको शहशाहों की यह महफिल मुबारक हो। श्रीमती गांधी ने मजार शरीफ के सामने झोली फैलाकर दुआ मागी।

माह मार्च १९८४ में भारत में निर्गुट सम्मेलन मे भाग लेने आये बंगलादेश के मार्शल प्रशासक ले० जनरल एच० एम० इरशाद और पाकिस्तान की बेगम शफीक जियाउलहक भी दरगाह की जियारत करने अजमेर आये। बेगम जियाउल हक ने उसकी जियारत करने के लिए बार-बार दुआ मांगी।

आस्तिक और नास्तिक - श्री फूलचन्द बाफणा

जो उवसामेई, तस्स अत्थि आराहणा।
जो न उवसामेई तस्य नत्थि आराहणा॥

जो उपशांत होता है (क्षमा रखता है) वही आराधक अर्थात् आस्तिक) है (क्षमा नहीं रखता है) वह आराधक नहीं अर्थात नास्तिक) है॥

बांसवाड़ा के धार्मिक एवं दर्शनीय स्थल

घोटिया आम्बा

महाभारत कालीन युग की याद दिलाने वाला जिले का 'घोटिया आम्बा' स्थल अत्यन्त रमणीय है जो बागीदौरा पंचायत समिति क्षेत्र में आता है। यह स्थल बांसवाड़ा से लगभग ३० किलोमीटर दूर है।

महाभारत कथा के अनुसार पांडवों ने वनवास के समय अपना कुछ समय घोटिया आम्बा केलापानी स्थल पर गुजारा था। यहीं पांडवों ने भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता से ८८ हजार ऋषियों को रसयुक्त भोजन कराया था। इन्द्र द्वारा प्रदत्त आम की गुठली को पाण्डवों ने यहा रोपा था। उस स्थल पर आज भी आम का पेड लगा हुआ है। यहां पाण्डवों के पांच कुण्ड बने हुए है तथा घोटेश्वर महादेव के मन्दिर में कुन्ती व द्रौपदी सहित पांडवों की मूर्तियां भी स्थापित हैं।

घोटेश्वर से लगभग एक किलोमीटर दूर पठार पार करते ही केला पानी का सुरम्य स्थल आ जाता है जहां प्राकृतिक झरने से गोमुख से होता हुआ शिवलिंग पर हर समय पानी गिरता रहता है। यहां स्थित शिवमन्दिर में भी पांडवों ने ८८ हजार ऋषियों को केले के पत्तों पर भोजन कराया था। अतः पठार के इस ढलान पर यहां फल विहीन केलों के झुण्ड आज भी विद्यमान हैं। इसी प्रकार भोजन से गिरे चावल से उत्पन्न साल के पौधे आज भी इस ढलान पर हर समय देखे जा सकते हैं। लोग बड़ी श्रद्धा से इन पौधों को यहां से तोड़कर अपने घरों के अन्न भण्डार में रखते हैं। मान्यता है कि इससे बरकत होती है। केलापानी स्थल पर साधक मुनि दूधाधारी की धूनी पर बाबाजी जगदीश आश्रम की प्रेरणा से श्रीराम मन्दिर बनकर तैयार हो गया है। यहां एक भीमकुण्ड भी बना हुआ है।

घोटिया आम्बा के वर्णित आम्र वृक्ष के नीचे धूनी पर हजारों श्रद्धालु भक्तजन नारियल भेंट चढ़ाते है।

घोटिया आम्बा' स्थल पर प्रति चैत्र अमावस्या से दूज तक भारी मेला भरता है जो जिले का सबसे बड़ा ग्रामीण मेला है। ५० हजार से भी अधिक स्त्री-पुरुष जिनमे अधिकांश आदिवासी होते हैं इसमें भाग लेते है तथा पांडव कुण्डों में स्नान कर घोटेश्वर महादेव एवं आम के पेड़ के दर्शन करते है।

घोटेश्वर महादेव का मन्दिर सतह से लगभग ४०० फीट की ऊंचाई पर बना हुआ है। मेला स्थल तीन तरफ पहाड़ियों से घिरा हुआ है। सिंचाई विभाग ने बारीगामा सिंचाई योजना बनाकर उस पर अमल करना प्रारंभ कर दिया है। इस स्थल की तीन तरफ की पहाड़ियों को मिट्टी की विशाल पक्की दीवार से जोड़कर कृत्रिम झील बनाई जा रही है। मन्दिर तक पहुंचने के लिये पहाड़ी पर ऊंचा नया रास्ता बनाया जा रहा है। इस घोटेश्वर मन्दिर की तलहटी में निर्माणाधीन बारीगामा सिंचाई बांध के बन जाने से इस स्थल की अनुपम रमणीकता में चार चाद लग जायगे।

छींछ का ब्रह्मा मन्दिर

बारहवी शताब्दी में छींछ ग्राम मे बना हुआ ब्रह्माजी का प्राचीन मन्दिर राज्य के इनेगिने मन्दिरों में से एक हैं। ब्रह्माजी की इतनी बड़ी विशाल मूर्ति वाला मन्दिर आसपास और कही नही है। मन्दिर का सभामण्डप बड़ा विशाल है। खम्भों पर खुदाई देखते ही बनती है। छः फुट ऊंची सुन्दर चार मुख वाली मूर्ति की स्थापना सिसोदिया वंश के महारावल जगमाल ने अप्रेल १५३७ मे की थी। मन्दिर की मरम्मत १४६५ में कल्ला के बेटे देवदत्त ने कराई थी। मन्दिर के बाहर संगमरमर के ६ पत्थरों पर नवग्रहों की मूर्तियां बड़ी सुन्दरता से खुदी हुई पड़ी है। मन्दिर से सटा हुआ एक तालाब है जिस पर एक घाट बना हुआ है जो ब्रह्माजी का घाट कहलाता है।

कलिंजरा के जैन मन्दिर

बांसवाड़ा से १६ मिल दूर दक्षिण-पश्चिम में हिरन नदी के तट पर कलिंजरा ग्राम के जैन मन्दिर प्रसिद्ध रहे है। यहां पर एक बड़ा शिखर

बन्द पूर्वाभिमुख जैन मन्दिर है। इसके दोनों पार्श्व में और पीछे एक २ शिखरबन्द मन्दिर बने हुए हैं और चारों तरफ देव कुलिकायें हैं। यह मन्दिर दिगम्बर जैनों का है और ऋषभदेव के नाम से विख्यात है। इसमें छोटी बड़ी कई मूर्तियां हैं। एक मन्दिर में पार्श्वनाथजी की खडी मूर्ति है, जिसके आसन पर वि० सं० १५७८ का लेख है। निज मन्दिर में मुख्य प्रतिमा आदिनाथ की है, उसके सामने के मण्डप में कई पाषाण व पीतल की मूर्तियां है जिनमें से एक सन् ११७६ ई० की है। इन मन्दिरों के दर्शनार्थ दूर-दूर से यात्री आते हैं।

त्रिपुरा सुन्दरी

तलवाड़ा ग्राम से ५ किलोमीटर दूर स्थित भव्य प्राचीन त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर में सिंह पर सवार भगवती अष्टादश भुजा की मूर्ति है। मूर्ति की अष्टादश भुजाओं में अठारह प्रकार के आयुध है। पैरों के नीचे प्राचीनकालीन कोई यन्त्र बना हुआ है। जिसे श्रद्धालु लोग त्रिपुरा सुन्दरी, तरतईमाता एव त्रिपुरा महालक्ष्मी के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस मन्दिर की गिनती प्राचीन शक्ति पीठों में होती है।

त्रिपुरा सुन्दरी के इस मन्दिर की स्थापना कब हुई है इसका अधिकृत उल्लेख कहीं नहीं मिलता, परन्तु मन्दिर में भगवती के उत्तर विभाग मे सम्राट् कनिष्क के समय का एक विशाल शिवलिंग आज भी विद्यमान है। ऐसे शिवलिंग नीलकंठ महादेव के मन्दिर (विट्ठलदेव) तथा अन्य शिव मन्दिरों मे भी विद्यमान है अतः इससे ऐसा जान पडता है कि त्रिपुरा सुन्दरी का यह शक्ति पीठ सम्राट कनिष्क के पूर्व का बना हुआ होगा।

गुजरात के सम्राट् सिद्धराज उपासना के लिये इस मन्दिर में आया करते थे। ऐसे प्रमाण प्राचीन शिलालेखों से मिले है।

वड़ोदिया के पास रहने वाले भील आज भी यह गरवा गाते है :-

"नवयुग ने नन्दन माता, ने त्रण जुग ने तरतई माता।"

इस मन्दिर की मरम्मत का थोड़ा बहुत उल्लेख पंचाल समाज की चोपड़ियों में कहीं - कहीं उपलब्ध है। परन्तु गत एक दो शताब्दियों के बीच निर्माण एवं जीर्णोद्धार की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं करवाया गया था।

इस प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार पिछले दशक में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी की प्रेरणा से सेठ मांगीलाल बागड़ी द्वारा कराया गया था जिस पर लगभग ६ लाख रु० व्यय हुआ था। यज्ञ मण्डप, धर्मशाला एवं चहारदीवारी भी बनाई गई है। जीर्णोद्धार में मन्दिर की प्राचीन स्थापत्य कला को पूर्ण रूप से अक्षण्ण रखा गया है। मन्दिर में खण्डित मूर्तियों का संग्रहालय भी बना हुआ है जिनकी शिल्प कला अद्वितीय है।

मन्दिर में प्रतिदिन दर्शनार्थियों का तांता बना रहता है। यह मन्दिर सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। प्रतिवर्ष नवरात्रि में यहां भारी मेला भी लगता है जिसमें हजारों श्रद्धालु नर-नारी आकर देवी का दर्शन लाभ करते है। यह मन्दिर सैलानियों का भी प्रमुख आकर्षण केन्द्र है।

अरथूना के प्राचीन भग्नावशेष मन्दिर

अरथूना, बांसवाड़ा के दक्षिण पश्चिम में ३५ मील दूर स्थित प्राचीन कस्बा है। यह बांसवाड़ा से गलियाकोट सड़क मार्ग पर स्थित है। पास ही में प्राचीन अमरावती नगरी के भग्नावशेष ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम उत्थूनक मिलता है, शिल्प कला की दृष्टि से आबू के मन्दिरों की कला में और यहां के मन्दिरों की कला में बहुत अधिक साम्य है।

प्राचीन अरथूना नगर वागड़ के परमार राजाओं की राजधानी था। वर्तमान कस्बा प्राचीन नगर के खण्डहरों के पास नया बसा हुआ है। प्राचीन नगर के खण्डहर और कई मन्दिर अभी कस्बे के बाहर विद्यमान हैं। जिनमें सबसे पुराना मण्डलेश्वर का शिवालय है। इस मन्दिर को यहां के

परमार राजा मण्डलीक के पुत्र चामुण्ड राज ने ३१ जनवरी १०८० में बनवाया था। गुम्बज के भीतर तथा निज मन्दिर के द्वार आदि पर बड़ी सुन्दर कारीगरी का काम है तथा अनेक उत्कृष्ट मूर्तियां दीवारों पर खुदी हुई है। इस मन्दिर के सामने एक पहाड़ी पर भग्नप्राय: चार शिव मन्दिर हैं। उक्त पहाड़ी से दक्षिण में कुछ दूर गगेला तालाब में होकर पश्चिम में जाने पर एक सुन्दर खुदाई वाला द्वार आता है जो उधर के मन्दिर समूह का द्वार होना चाहिये। वह मन्दिर समूह हनुमान गढी के नाम से विख्यात है। उस समूह में हनुमान, वराह, विष्णु का एक-एक एवं तीन शिव मन्दिर हैं। निकट ही पाषाण का बना एक कुण्ड है जिसके सामने नीलकंठ का बड़ा मन्दिर है। उसमें नवग्रह, चामुण्डा और उमा-महेश्वर की मूर्तियां रखी हुई हैं। निज मन्दिर में शिवलिंग के पास पहुँचने के लिये भी सीढियां उतरनी पड़ती है। चतुर्मास में यह मन्दिर जल से भर जाता है। हनुमान गढी के मन्दिर समूहों में यह सबसे बड़ा मन्दिर है जिसके टूटे भागों की पुरातत्त्व विभाग द्वारा मरम्मत कराई गयी है। इस मन्दिर की शिल्पकला उत्कृष्ट बन पड़ी है।

यहां पर कई जैन मन्दिर भी थे अब जैनियों ने उनके पत्थर, द्वार आदि ले जाकर दूर-दूर के गावों मे नये मन्दिर खड़े कर लिये हैं। वर्तमान अरथूना गांव का जैन मन्दिर भी नये पुराने जैन मन्दिरों के पत्थरों से बनाया गया है।

अरथूना ग्राम की अनेक टेकरियों की खुदाई में मन्दिर मिले है। पुरातात्विक दृष्टि से इनकी रक्षाहेतु पुरातत्त्व विभाग सक्रिय है, खुदाई से प्राप्त अनेक शिव, वैष्णव व जैन मन्दिरों में की टूटी मूर्तियों का संग्रहालय हनुमान गढी के पास बनाया गया है। इन संग्रहीत मूर्तियों की स्थापत्य कला बेजोड़ है। इस क्षेत्र के खेतों में हल के साथ ईंटे बाहर निकल आती हैं जिनसे पता चलता है कि यहां धरती के भीतर अनेक मन्दिर व प्रासाद दबे पड़े हैं, जिनकी खुदाई से अनेक रहस्य खुलने की आशा की जा सकती है।

तलवाड़ा के प्राचीन मन्दिर

बांसवाड़ा से लगभग ८ मील पश्चिम में तलवाड़ा ग्राम के बाहर ११ वीं

शताब्दी के आसपास का बना हुआ जीर्णशीर्ण सूर्य मन्दिर है जिसमें सूर्य की मूर्ति एक कोने में रखी हुई है और बाहर के चबूतरे पर सूर्य का रथ (एक चक्र) टूटा हुआ पड़ा है उसके निकट श्वेत पत्थर की बनी हुई नव ग्रहों की मूर्तियां है जिनमें से तीन टूटी हैं। सूर्य मन्दिर के पास ही बारहवीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ लक्ष्मी नारायण का मन्दिर है जिसके नीचे का हिस्सा प्राचीन व ऊपर का नया है। मूर्ति, सभा मण्डप में पड़ी है। एक ताक में ब्रह्मा की मूर्ति भी है।

सूर्य मन्दिर के निकट ही एक जैन मन्दिर है जिसका थोड़ा ही अंश अवशेष रहा है। बाहर एक सेन में वहां की दो दिगम्बर मूर्तियां पड़ी हैं जो कारीगरी की दृष्टि से बहुत उत्तम है। उनमे से एक के नीचे वि० स० ११२२ का लेख है। इस मन्दिर के सामने ही थोडी दूर पर गदाधर का जीर्ण मन्दिर है, जिसकी छत में आबू पर के प्रसिद्ध विमलशाह के मन्दिर जैसी सुन्दर कारीगरी है। कारीगरी की दृष्टि से यहां की शिल्पकला अद्वितीय है। इस मन्दिर की प्राचीन मूर्ति का अब पता नही है। यहां के लोहारों ने इसमें गदाधर की नई मूर्ति बैठाई है।

अन्य दर्शनीय स्थल

मगमेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, कपालेश्वर, रामेश्वर, पाराहेडा, घोड़ी रणछोड जगपुरा, जंगमेश्वर, सूरतगढ़ एवं मानगढ़ के पठार, जीराकोट, गदरिया, फाटीखान, वीरेश्वर, अपोलेश्वर, मलाखड़ेश्वर, परसोलिया, अन्देश्वर, मंगलेश्वर अन्य रमणीक स्थल हैं जो नदी-नालों के किनारे एव पहाड़ियों के बीच स्थित हैं।

वनेश्वर मन्दिर के निकट बने हुये अतिप्राचीन बौद्ध स्तूप से ऐसा लगता है कि यह नगरी अतिप्राचीन और सांस्कृतिक जनजीवन से परिपूर्ण रही है।

वीरेश्वर जगपुरा पाल के पास माही के किनारे माही से ३०० गज ऊपर शिव मन्दिर है तथा पास में एक कुण्ड है जहां बारह मास पानी निकलता रहता है।

बांसवाड़ा नगर के दक्षिण में एक मील दूर अब्दुल्ला पीर की दरगाह है जो बोहरों का तीर्थ स्थान है। विदेशों से भी बोहरा लोग इस दरगाह के दर्शनार्थ आते हैं।

बांसवाड़ा कस्बे से दो मील दूर आई तालाब पर स्थित राजारानी के नाम से विख्यात कल्प वृक्ष और पहाड़ी पर स्थित मन्दिर आकर्षण के केन्द्र हैं। नगर के पास ही डायलाव तालाब पर बादल महल का सौन्दर्य प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

डूंगरपुर जिले के प्रसिद्ध तीर्थस्थल वेणेश्वर व गलियाकोट बांसवाड़ा की सीमा से सटे हुये हैं जिन्हें केवल माही नदी बांसवाड़ा से पृथक् किये हुये है। माही के दूसरे किनारे पर ये दोनों तीर्थ स्थल स्थित हैं। कडाना बांध के फलस्वरूप माही का जल स्तर बढ जाने से नौका विहार के रूप में गलिया-कोट को विकसित किया जा सकता है। गलियाकोट सम्प्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल है। नौका विहार के रूप में विकसित होने पर बांसवाड़ा सीमा गलियाकोट से केवल एक फर्लांग दूर रह जायेगी।

वेणेश्वर आदिवासियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है जो माही, सोम (जाखम) त्रिवेणी संगम पर एक टापू पर स्थित है जो चारों ओर से नदियों से घिरा हुआ है। इस स्थल का प्राकृतिक सौदर्य अनुपम है। बरसात की मौसम में माही-सोम की उफनती जलधारा का दृश्य हृदय पर अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहता। प्राचीन शिव मन्दिर यहां के निवासियों को सदियों से धार्मिक प्ररणा देता रहा है।

गौरवपूर्ण अतीत

स्कन्द पुराण में इस प्रदेश के सम्बन्ध में कुमारिका खण्ड तथा वागुरी प्रदेश दो नाम मिलते हैं। माही प्रदेश को पुष्प प्रदेश भी कहा गया है। इस प्रदेश के कुछ भाग को नागखण्ड भी कहीं-कहीं उल्लिखित किया गया है। दक्षिण के चालुक्य वंशीय राजाओं के आगमन तक इस प्रदेश को लाट प्रदेश भी कहा जाता था। आठवीं शताब्दी के मध्य तक राजा भोज के समय छींछ के एक पंडित के दानपात्र पर स्थली मण्डल शब्द अंकित है।

भरतपुर जिले के तीर्थ

- श्री गोपाल शर्मा

काँमा

कामवन, जिसे आजकल काँमा भी कहते है, सांस्कृतिक रूप में सदैव ब्रजमंडल का महत्वपूर्ण भाग रहा है। बस्ती के चारों ओर ऊँची दीवारें हैं; तथा कई द्वारों का 'धूरकोट' है जो दूर से देखने पर दुर्ग जैसा जान पड़ता है। यह इस समय भग्नावस्था में है; इसका केवल 'मथुरा दरवाजा' दरवाजा ही कुछ ठीक दशा में है। कामवन पुरातत्व का बड़ा भंडार है। यहाँ मंदिरों एवं कुंड-सरोवरों के अतिरिक्त पुरानी मूर्तियों तथा कला-कृतियों के भग्नावशेष विपुल संख्या में विद्यमान है। इनमें लाल और मलेटी रंग के पत्थरों का उपयोग हुआ है।

कामवन के देव स्थानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध श्री कामेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है। दूसरा स्थल 'चौरासी खंभा' वाला मन्दिर है जो एक पहाड़ी पर स्थित है। मध्यकालीन जिस विष्णु मन्दिर का उल्लेख मिलता है वह यही है। इसके ध्वसावशेषों में से बहु संख्यक कलात्मक स्तम्भों द्वारा इसका निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदायों के भी अनेक मन्दिर है जो कालक्रम में कुछ बाद के है। इनमें वल्लभ संप्रदाय के पंचम एवं सप्तम गृहों से सम्बन्धित श्री गोकुल चन्द्रमाजी तथा श्री मदन-मोहनजी के मन्दिर, चैतन्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित श्री गोविन्ददेवजी, श्री गोपीनाथजी, श्री मदनमोहनजी तथा वृन्दादेवीजी के मन्दिर; और राधा-वल्लभ सम्प्रदाय का श्री राधावल्लभजी का मन्दिर उल्लेखनीय है। इनके महरावदार दरवाजों तथा जाली झरोखों और गोखों मे पत्थर की कटाई का काम हुआ है।

यहाँ पर कुंड सरोवरों की इतनी अधिकता है, जितनी शायद ही ब्रज के किसी अन्य स्थान में हो। कवि जगतनन्द कृत 'ब्रज वस्तु वर्णन' नामक ग्रंथ

में व्रजमण्डल के१५६ कुंड सरोवरों का नामोल्लेख हुआ है जिनमें से ८४ केवल कामवन में बतलाये गये हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध विमल कुण्ड है। इसके चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं, जिनके किनारों पर अनेक मन्दिर और छतरियाँ है। तत्कालीन स्थापत्य की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण है।

(व्रज की कलाओं का इतिहास ले० प्रभूदयाल पृष्ठ ४११)

पूँछरी

पूँछरी, गिरी गोवर्धन परिक्रमा मार्ग में स्थित है। गिरी गोवर्धन की सात कोस की परिक्रमा का यह भाग राजस्थान राज्य में आता है बाकि उत्तर प्रदेश में है। इसमें पूँछरी मन्दिर, पूँछरी का लोठा का मन्दिर, राधा-कृष्णजी का मन्दिर, गणेशजी का मन्दिर दर्शनीय है।

केलादेवी

केलादेवी जिले ले बयाना कस्बे के पास स्थित है। निकटम रेल्वे स्टेशन केलादेवी है। यह एक धार्मिक एवं रमणीयक स्थल है। जहाँ प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा १५ से चैत्र शुक्ला १० तक मेला लगता है। इसमें लगभग ५० हजार लोग एकत्रित होते है।

डीग

व्रज मण्डल का एक स्थल 'डीग' भी है। यहाँ के जल महलों के अति-रिक्त मन्दिर भी दर्शनीय है। यहाँ श्री लक्ष्मण मन्दिर, हनुमान मन्दिर लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर प्रसिद्ध है।

महापुरुषों के मेले

रमेश स्वामी मेला -

रमेश स्वामी का मेला जिले के भुसावर कस्बे में लगता है। रमेश स्वामी ने अपना बलिदान अंग्रेजों के विरुद्ध किये जा रहे विद्रोह में दिया था। यह मेला प्रतिवर्ष फरवरी मास में लगता है।

घना पक्षी अभयारण्य

कोई २९ वर्ग मील क्षेत्र में फैला घना अभ्यारण्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का पक्षी अभ्यारण्य है जहां प्रति वर्ष शीतकाल में लाखों की तादाद में दुरस्थ देशों से आए पक्षी प्रवास करते हैं कोई ८० वर्ष पूर्व भरतपुर नगर से मात्र तीन किलोमीटर दूर एक आखेट स्थल के रूप में विकसित घना पक्षी अभ्यारण्य में इसके दक्षिणी छोर पर स्थित अजान बांध का जल नियंत्रित रूप से प्रवाहित किया जाता है। नदियों द्वारा लाये गये इस मीठे जल में न केवल पक्षियों का प्रिय खाद्य घोंघे तथा मछली ही प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है वरन् यहां की मुलायम घास में एक विशेष प्रकार का खाद्यान्न भी होता है जिसे प्रवासी पक्षी, जो प्राय: शाकाहारी होते है, काफी चाव से खाते है।

फरवरी १९६४ तक यह अभयारण्य भरतपुर के भूतपूर्व महाराजाओं के निजी आखेट स्थल के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता रहा जहां उनके निजी मेहमान तथा विदेशी अतिथि प्राय: मुर्गाबियों के शिकार के लिए आमन्त्रित किए जाते थे। किन्तु इसके बाद इस क्षत्र में सर्वत्र पशु पक्षियों के शिकार पर पाबन्दी लगा दी गई। केवलादेव घना में पाये जानेवाले पक्षियों में पेन्टेड स्टॉर्क (जांघिल), ओपनबिल स्टॉर्क, जल कौआ, रामी पेस्टर, क्रौंच, हंस मुर्गाबी, वास्टेल बुडकाक, बगुले, बत्तख, गरुड़, बाज, बुलबुल, गौरैया, पपीहा, तीतर बटेर, सारस, शतुरमुर्ग, सोनचिडिया तथा चकवा-चकवी आदि विभिन्न प्रकार के देशी पक्षियों के अलावा शीतकाल मे कोई ३५० प्रकार के प्रवासी पक्षी भी साइबेरिया, पूर्वी यूरोप मंगोलिया, मध्य एशिया और इंग्लैंड तक के दूरस्थ क्षत्रों से आते हैं। पक्षियों की इस अन्तर्राष्ट्रीय संगम स्थली पर शीतकाल मे पर्यटको, जीवशास्त्रियों तथा पक्षी प्रेमियों का एक मेला सा लग जाता है। हाल के वर्षो में घना अभ्यारण्य विशेष रूप से पर्यटन मानचित्र पर उभरा है जिसके फलस्वरूप यहां देशी व विदेशी पर्यटकों की संख्या मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

पक्षियों के अलावा अभ्यारण्य में चीतल, सांभर, बनगाय, जंगली सूअर, नीलगाय गीदड नेवला अजगर जेसे वन्य जीव पाये जाते हैं।

भीलवाड़ा जिले के धार्मिक स्थल

भीलवाडा जिले का धार्मिक दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है । कहा जाता है कि प्राचीनकाल में बदनोर के निकट गोतमजी नामक स्थान पर मधु केतमा और रावण ने कभी तपस्या की थी। यह स्थान बाद में एक तीर्थ स्थल बन गया। प्राचीनकाल में यह जिला महाभारत की घटनाओं की भी कड़ी रहा है। विश्वास किया जाता है कि युधिष्टर के पौत्र जन्मेजय ने एक समय मौजूदा जहाजपुर में नागों का यज्ञ किया था जिसके कारण इस स्थान का नाम लम्बे समय तक यजनापुर रहा जो बाद में जहाजपुर कहलाने लगा। सम्राट अकबर के समय की यहाँ गईबी पीर नामक सन्त की एक मस्जिद भी है। जहाजपुर व बिजोलियां में प्राचीनकाल के जैन मन्दिर हैं जो यह बताते हैं कि अतीत में नरेशों ने यहां जैन धर्म को भी प्रोत्साहित किया। जिले का शाहपुरा कस्बा गत दो शताब्दियों से राम स्नेही सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र है। इस सम्प्रदाय का यहाँ बडा रामद्वारा है जहां हर वर्ष फूलडोल का वार्षिक उत्सव होता है। इस जिले का लादूवास ग्राम नाथ सम्प्रदाय का पीठ स्थल है। आसीन्द के निकट सवाईभोज द्वारा निर्मित मन्दिर गुजर समाज का अखिल भारतीय स्तर का धार्मिक स्थल है। भीलवाडा के निकट हरणी महादेव में दर्शनीय शिव मन्दिर है। तिलस्वा महादेव, त्रिवेणी संगम पर स्थित शिव मन्दिर, बदनोर का राणा कुम्भा द्वारा निर्मित देवी का मन्दिर, कोटड़ी चारभुजाजी का मन्दिर सिगोली ग्राम में सिगोली श्याम मन्दिर तथा बिजोलियां के निकट मन्दाकिनी का शिव मन्दिर आदि भी यहां के प्रमुख धार्मिक स्थल है जो कभी इस क्षेत्र की साम्प्रदायिक सद्भाव एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक माने गये हैं। जिले में अनेक स्थानों पर आर्य समाज मन्दिर भी है।

साम्प्रदायिक एकता की संगमस्थली नरहड़

- चिरन्तनकुमार

चिड़ावा के पास एक गाव है, जिसे नरहड़ कहते हैं। प्राचीनकाल में नरहड का नाम 'अजोधन' या 'अयोध्या' था - यह हजरत शक्करवार के विषय में उपलब्ध मुसलमानों की तवारिखों से सिद्ध हो जाता है।

जिस समय (१३ वी सदी मे) हजरत हाजिबशाह शक्करवार नरहड़ आए उस समय इस स्थान का नाम 'अजोधन' और 'हरि का पतन' प्रचलित था, जिसे बाद में 'पाक पट्टण' कहने लगे। मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता आदि ने इस स्थान का नाम 'नरण' 'नारडीन' एव नारायण' बताया है।

हिन्दुओं और मुसलमानों की ही नही, जैनों की भी यह प्रसिद्ध नगरी रही है। १३ वीं सदी की "जैन गुर्वावली" में इसी स्थान का नाम 'नहभट्ट' पाया जाता है।

स्व० पतराम गौड ने एक स्मारिका में लिखा है कि नरहड कितना पुराना है - इसकी साक्षी केवल वेद और पुराण ही नही देते, बल्कि इतिहास भी देता है। फरीद शक्करगज के इतिहास के अनुसार यह स्थान "अजोधन" या अयोध्या" था। महमूद गजनवी के इतिहासकार ओटवी आदि ने 'नरण' या 'नारडीन' का वृतांन्त वर्णन करते हुए लिखा है कि ११ वी सदी में मीरअली ने नरहड के पंडितो को बुलवाकर एक मन्दिर के शिलालेख के बारे में पूछा तो पंडितों ने खोदितलिपि में लिखे उस शिलालेख के आधार पर यह बताया था कि उक्त मन्दिर ४० हजार वर्ष पूर्व बना था - इस प्रकार उक्त स्थान की चिरकालीनता सिद्ध होती है।

नरहड के दक्षिण पूर्व मे जहा कभी-कभी ज्वाला की लपटें प्रकट होती हैं वही जमीन के नीचे नीले रंग के पत्थर का सिंहासन गड़ा हुआ है, इसे नरहडवासियों ने कुछ समय पूर्व देखा था। संभवतः यह इक्ष्वाकुओं या

शालिवाहनों का सिंहासन हो। शक सूर्यपूजक थे। महाभारतकाल में अयोध्या का नाम "आविघ्यनगरी" था और क्रोष्टु अंधकवंशी यादवों का यहां राज्य था। स्यमतमणि के उपाख्यान में सत्राजीत द्वारा आविघ्यनगरी के उप:स्पृष्टु ताल के पास सूर्य के साक्षात्कार की कथा प्राय: सभी पुराणों में आई है। वह ताल अब एक गढे के रूप में रह गया है। इस ताल की मिट्टी खोदना अब भी धर्म माना जाता है। आजकल उक्त स्थान को गैबी पीर कहते हैं। गैबीपीर के समीप ही हजरत शक्कर गंज या शक्करबार की यह दरगाह है।

ये पठान मोंटगुमरी जिले के तहत नामक स्थान के रहने वाले थे और इन्हें स्वप्न में गैबी पीर के दर्शन हुए थे जिसके कारण ये हांसी से बांगड़ जिले में आकर नरहड रहने लगे और गैबी पीर के प्राचीन पुण्य स्थल के निकट ही उन्होंने अपनी झोंपड़ी बनाली। मृत्यु के बाद उनकी दरगाह भी वहीं बनी। इस ऐतिहासिक दरगाह में देश विदेश से जायरीन आते हैं।

मेंहदीपुर – श्री योगेशचन्द्र शर्मा

अनास्था और धर्म के प्रति बढते हुए अविश्वास के इस युग में मेंहदीपुर का स्थान एक आश्चर्यपूर्ण चमत्कार जैसा लगता है। भूत-प्रेतों के अस्तित्व पर आज का शायद ही कोई बुद्धिजीवी विश्वास कर पाये, लेकिन मेंहदीपुर में मानव-शरीर के माध्यम से हजारों भूत-प्रेतों को जब हम दण्ड के भय से चीखते और चिल्लाते हुए देखते हैं तो अपने अविश्वास पर हमें पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस होती है। यहां पर नित्य ही देश के कोने-कोने से अनेक व्यक्ति आते हैं और अपनी भूत-प्रेतों की व्याधि से मुक्ति प्राप्त करके घर लौटते हैं। हर सप्ताह, मंगल और शनिवार को यहां पर मेले भरते हैं। वर्ष में दो बार होली और दशहरे पर यहां विशेष मेले भरते हैं, जिनमें दर्शनार्थियों की संख्या बेहद बढ़ जाती है। भूत-प्रेतों की व्याधि के अतिरिक्त, पागलपन, मिर्गी, लकवा तथा तपेदिक जैसी बीमारियों के रोगी भी स्वास्थ्य-लाभ करते देखे गये हैं। मेंहदीपुर, बांदीकुई रेलवेस्टेशन से ३८ कि.मी दूर है।

बगड़ के पीर

[हजरत इजेतुल्ले शाह साहब रहम तुल्ला अलेह]

- रामस्वरूप परेश

राजस्थान की वीर प्रसु वसुंधरा के कण-कण का निष्ठावान राष्ट्र भक्तों ने अपने शोणित से अर्चन कर बलिदानी परम्परा की नींव डाली। सुमधुर काव्य सर्जकों ने इसे अमृत से आप्लावित किया और सन्त महात्माओं ने अपनी लोक कल्याणकारी पूत वाणी से आदर्शों की स्थापना कर धार्मिक समन्वय के मूल मंत्र को प्रतिध्वनित किया। इसी गरिमामयी मातृभूमि के शेखावाटी मरु अंचल में झुन्झुनू जनपद के अन्तगत स्थित बगड कस्बे में मानव कल्याण के लिए हजरत इजेतुल्ले शाह साहब रहम तुल्ला अलेह का प्रादुर्भाव हुआ।

हजरत इजेतुल्लेशाह के जन्म के सम्बन्ध में हजरत हाजी खान ने बहुत पहले ही भविष्यवाणी करदी थी जो अक्षरशः सत्य निकली। हजरत हाजी एक पहुंचे हुये सन्त थे जिनकी कब्र आज भी बख्तावरपुरा गांव के पास हाजा जी की ढ़ाणी में मौजूद है। एक दिन हजरत इजतुल्लेशाह के पिता मौलवी अजीजुद्दीन खुडानूं के पास हजरत हाजी खान से मिले। हाजी खान ने मौलवी साहब से कहा कि- "मोलवी साहब आप दूसरी शादी कर लीजिये", इस पर मौलवी साहब बोले- इस उम्र में ? मैं सत्तर के करीब हूं, मेरे बाल पक गये हैं, अब शादी से क्या लाभ ? पर सन्त हाजी खान अपनी बात पर जोर देते हुये बोले- आप शादी अवश्य करें। आपकी दूसरी शादी से एक पुत्र पैदा होगा, जो अपने जमाने का माना हुआ सन्त होगा। और उससे जन-साधारण का कल्याण होगा।

मौलवी साहब हाजी साहब के आग्रह को नहीं टाल सके और दूसरी शादी करली। इसके परिणाम स्वरुप उनके यहां हजरत इजतुल्ले साहब का जन्म हुआ। लोक प्रसिद्ध हैं- 'होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात' हजरत

इजतुल्ले शाह बचपन से ही रोजा और नमाज जैसी धार्मिक प्रवृत्तियों में रुचि लेकर पाबन्द रहने लगे। रात-रात भर जागकर अल्लाह ताला की इबादत करते। प्रारम्भिक शिक्षा से निवृत्त होकर आपका ध्यान ज्ञान प्राप्ति में लगा। आप घर छोडकर गुरु की तलाश में देहली जा पहुंचे, वहां आपका परिचय हजरत बुरहान साहब रहम तुल्ला अलेह से हुआ। जो दिल्ली के सुप्रसिद्ध मुर्तजि बुजुर्ग शाह मुहम्मद फरहाज साहब के खलीफा थे तथा परस्पर अनुयायी थे। हजरत बुरहान साहब ने इजेतुल्ले शाह की प्रतिभा लगन और कुछ कर गुजरने की क्षमता देखकर अपना शिष्यत्व प्रदान किया। वहां रहकर इन्होंने समुचित ज्ञान प्राप्त कर तपस्या और भक्ति के कई सोपान तय किये। इस प्रकार आप सूफी सन्त परम्परा के अनुयायी बने। वहां से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर आप हजरत बुरहान के आदेश से बगड वापस पधारे।

बगड़ पहुंचने के बाद शाह साहब ने कुदरेत खल्क (भगवान के बंदे) की भलाई में धर्म और जाति की संकीर्णता से उठकर जुट गये। सूफिया ए क्राम का यही काम रहा है। उनका सिद्धान्त है कि खिदमते खल्क (मनुष्य मात्र की भलाई) ही अल्लाह ताला की सबसे बडी इबादत है। जिनका कौल है कि-

इबादत अज कुदरते खल्क नीयत के होते
सबसे तेरी इबादत कमलूके खुदा की खिदमत है।

सूफिया ए क्राम का कथन है :-

हिन्दुओं का है खुदा न मुसलमानों का
न यहूदियों का है न मजूसियों का क्रिस्टानों का
पास सिखों का इससे है न कुछ अफगानों का
वो तो दाता है हर कौम के इन्सानों का
जिसने पैदा किया है लाज उसी को सबकी
पालता सबको है तारीफ है मेरे रब की

सूफिया ए क्राम के इस उदार और महान् दृष्टिकोण के हिमायती थे वली हजरत इजतुल्ले शाह जिनका जीवन मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए हिन्दू-मुसलमान तो एक तराजू पर तोलते हुये ईश्वर से प्रार्थना करते गुजरा आपके बुलन्द इखलाक और इन्कसारी (सद् व्यवहार) को देखकर लोग आपके भक्त हो जाते थे। इसी लोक प्रियता के कारण आज भी इन्हे मियां साहब के नाम से जानते हैं।

मियां साहब के समकालीन और आत्मीय हिन्दू सन्त थे रुपादास जी। सुना जाता है कि ये दोनों सन्त मित्र जंगल में मिल बैठते और अपने-अपने चमत्कार दिखाया करते थे।

वह नवाबों का जमाना था। चारों ओर मुसलमानों का दबदबा था। सायकाल मस्जिद की मीनारों से मौलवियों की आजान का स्वर गूंजता और दूसरी ओर रुपादासजी की शखध्वनि प्रतिध्वनित होती। मौलवी लोग यह कैसे सह सकते थे। रुपादासजी को विवश किया गया कि वे आजान के समय शख न फूके। और एक दिन उन्होंने कह ही दिया कि आज से गाजेबाजे बंद। अब शख नही बजेगा। दूसरे दिन मुसलमान कौम के हर व्यक्ति की हालत खस्ता होने लगी। गाजेबाजे बन्द हो गये। नवाबियत बौखला उठी, सब दौड कर मियां साहब को साथ लेकर रुपादासजी के पास गये और उन्हें प्रसन्न कर मुसलमानों को बचाया। उनकी दृष्टि में मुसलमान और हिन्दू में कोई अन्तर नहीं था। वे समन्वयवादी थे। सामाजिकता के सामन्य धरातल से वे बहुत ऊपर उठे हुये थे। शाह साहब ने कई विलक्षण चमत्कार दिखाये जो आज भी लोगों की जबान पर हैं।

शेखावाटी के एक ठिकाने का हाथी बीमार हो गया उसे पीरजी के पास लाया गया। पीरजी ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा - तुम रोज जुमा को यहा आया करो। इस प्रकार कई जुमे तक वह हाथी अकेला बगड आता और वापस चला जाता। हाथी ठीक हो गया। ठिकाने ने मियां साहब को जमीन दी। इसके बाद कई मरीज, कई हाजतमन्द और भूत-प्रेम व्याधि से निराश

इस लोक कल्याणकारी सन्त पुरुष का निधन १७ सफर १३०९ हिजरी में वगड़ हुआ वर्तमान में जो मकबरा है आप उसमें दफनाये गये थे।

शाह साहब के उक्त चमत्कार केवल उनके जीवन तक ही नहीं आज भी हिन्दू-मुस्लिम हाजतमन्दों की मुराद पूरी करते हैं, असेबजुदा (भूतप्रेत प्रकोप) बीमार और अन्य हर प्रकार के सवाली दूर-दूर से यहां आते है और मनौती कर मनोवांछित फल पाते है।

हर वर्ष १५, १६ और १७ सफर को दरगाह शरीफ पर उर्स लगता है जिसमें सईद साबरी और अब्दुल लतीफ जैसे प्रसिद्ध कव्वाल अपनी कला से खिराजे अकीदत पेश करते हैं। और दूर-दूर से आने वाले विभिन्न धर्म और जाति के लोग शिरकत करते हैं।

शहर के उत्तर में स्थित दरगाह हिन्दु स्थापत्य कला का नमूना है। जनाब अजीजखां शेख के निधन के बाद जनाब इकबाल हुसेन साहब दरगाह के गद्दी नशीन हैं, आप एक सुसंस्कृत और विद्वान व्यक्ति हैं। ये दरगाह में भवन निर्माण के कार्य की दिशा में काफी प्रयत्नशील है।

हिन्दू समाज में भी लोग मांगलिक पर्वों पर मियां साहब के गीत गाते हैं तथा प्रसाद आदि चढाकर मनौतियां करते हैं लोगों का विश्वास है कि आज भी हर शुक्रवार को नरहड़ के पीर हजरत हाजब साहब मियां साहब से मिलने आते है और कुछ लोगों ने एक तेज रोशनी पूर्व से आती हुई देखी भी हैं।

तीन दिन के उर्स में 'शब ए कव्वाली' कार्यक्रम विशाल महफिल खाने में सम्पन्न होता है। इसमें मियां साहब के कई पगडीबंध मुरीद कलाकार भी सिरकत करते है। चादर चढाने का कार्यक्रम भी उल्लेखनीय होता है।

हजरत इजेतुल्ले शाह साहब रहमतुल्ला अलेह के दो आत्मीय शिष्य हजरत शाह मुहम्मद कासम जो शेखजी हाली के नाम से प्रसिद्ध है उनका मजार हैदराबाद दक्खिन में है। और हजरत इरादत शाह का मजार ~ पुर में है।

लोक-देवता गोगाजी

- गणपति स्वामी

आपका जन्म-स्थान ददरेवा है जो राजगढ़ (सादुलपुर) से तारानगर जानेवाले बसमार्ग पर पड़ता है। यह नगर काफी प्राचीन है और अपना ऐतिहासिक गौरव लिए हुए है। आपके दादा उमर चौहान यहीं के शासक थे। उमर के बड़े पुत्र का नाम जेवर और पुत्री का नाम छत्रील देवी था। जेवर की पहली शादी बाछलदेवी के साथ हुई थी जिसके काफी समय तक कोई सन्तान पैदा न हुई। जब जेवर ने सन्तानोत्पति के लिए दूसरा विवाह करना चाहा तो बाछलदेवी ने उनको अपनी छोटी बहन काछलदेवी से शादी करने के लिए राजी कर लिया फलतः शादी हुई। नव वधू घर आई, पर उसके भी कोई सन्तान पैदा न हुई।

लोक-प्रचलित जन्मकथा -

संयोगवश गोरखनाथजी एक बार घूमते-फिरते ददरेवा आ ठहरे। बाछल ने उनकी सेवा करनी शुरू किया। उनकी सेवा से प्रसन्न हो बाबा ने एक दिन कहा "बेटा मै कल 'रम्मत' पर जाऊँगा। तू भोर में ही मेरे से मिल लेना।" यह बात काछल के कानों तक भी पहुंच गई। वह धूर्त और चालक थी। वह बाछल का वेश बनाकर प्रातःकाल में ही बाबा के यहां जा धमकी। बाबा उस समय आंखे बन्द किये ध्यानावस्थित थे। उन्होंने पैरों की आहट सुनकर अपनी झोली में से दो जौ के दाने निकाले और यह कहते हुए उसकी ओर हाथ फैलाया कि इन दोनों को पानी के साथ निगल लेना, तेरे दो जोड़ले पुत्र होंगे। काछल ने घर आकर तपाक से उन दोनों को निगल लिया। कुछ समय पश्चात् बाछलदेवी भी बाबा के यहां पहुंची। बाबा ने उसे देख कर कहा - "बेटी ! दुबारा कैसे आई ? बाछल बोली बाबा, मैं तो पहली बार ही आई हूं।" बाबा ने कहा बेटी मेरे पास जो कुछ था वह तो काछल ले गई। खैर तुम्हारे लिए और प्रयत्न करूंगा।

अब बाबा पद्मा नागिन के पास पहुंचे और उससे एक बच्चा भीख में मांगा। नागिन ने कहा "बाबा भोजन-वस्त्र तो भीख में दिये जा सकते हैं पर पुत्र भीख में नहीं दिया जा सकता।" बाबा ने चोरी-छुपे उसका एक बच्चा उठा लिया और चलते बने। नागिन ने अपने बच्चों को गिना तो एक बच्चा नदारद। वह बाबा के पीछे बेतहाशा दौड़ी। बाबा ने उसे देखते ही उस बच्चे को गूगल बनाकर एक समीपस्थ जांटी के पेड़ पर चिपका दिया। पद्मा बाबा के पास पहुंची और अपना बच्चा वापिस मांगा। बाबा ने अपनी झोली-झंडे पद्मा के आगे डाल दिये और पद्मा उनकी तलाश कर लौट गई। बाबा ने गूगल को जांटी के पेड़ से उतारते समय कहा "पद्मा का बच्चा कुछ समय तक जांटी के पेड़ पर रहा है अतः गोगा जयन्ती के पहले दिन केसरा कुंवर की मनौती जांटी के नीचे की जायेगी।

अब बाबा ने ददरेवा लौट कर वह गूगल बाछलदेवी को दिया और वह उसे पानी के साथ निगल गई। फलतः भादो बदी नवमी को गोगाजी का जन्म हुआ।

क्षत्रिय जाति का सबसे बड़ा अवगुण उनकी पारस्परिक फूट रहा है और समय-समय पर भारत का गला भारत की तलवार ने ही काटा है।

काछब के पुत्रों अरजन सरजन और गोगाजी में भी यह फूट पड़ गई। फलतः अरजन-सरजन ने ददरेवा छोड़कर जोड़ी नगर बसाया और वहीं रहने लगे। उन्होंने वहीं से बार-बार गोगाजी पर हमला किया और गोगाजी ने उनको हर बार मार भगाया।

अन्त में वे निराश होकर दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह तुगलक के पास पहुंचे और उसे यह झूठा झांसा दिया कि गोगा के पास अपार धन है वह दिल्ली सल्तनत का कट्टर विरोधी है।

बादशाह और अरजन-सरजन के संयुक्त सैन्यबल का गोगा ने मुकाबला किया और अरजन-सरजन की समाधियां ददरेवा से दो कोस दूर खुड्डी गांव

में बनी हुई हैं। बादशाह को जब यह पता चला कि यहां कोई धन का भंडार नहीं और अरजन-सरजन ने झूठा झांसा दिया है तो वह दिल्ली लौट गया। गोगा इस युद्ध में नहीं मारा गया क्योंकि ददरेवा में उसकी समाधि नहीं है।

गोगा लौट कर घर आया और अपनी माता से पानी मांगा तो माता ने कहा- पानी फिर पिलाऊंगी पहले मुझे यह बताओ कि अरजन-सरजन का क्या हाल है ? गोगा ने कहा "माता वे दोनों मेरे हाथ से मारे गये।" माता ने झुंझलाकर कहा- "तुम भ्रातृ-वध-दोषी हो, मैं तुम्हारा मुंह देखना नहीं चाहती। गोगा प्यासा हो वापिस मुड़ा और उस बियाबान जंगल में जाकर तपस्या करने लगा जो अब गोगा मेड़ी कहलाता है गोगाजी ने यहीं इहलीला संवरण की। यहां गोगाजी की मिट्टी की समाधि बनी हुई थी जो बाद में बीकानेर नरेश गंगासिंहजी ने पक्की बनवा दी। यहां हर साल गोगा जयन्ती के अवसर पर मेला लगता है और हजारों स्त्री-पुरुष गोगा की मनौती करने यहां आते हैं।

सती तीर्थ

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सती पादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्व देवानां मुनीनां च सतीषु तत्॥

पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सती नारी के चरणों में सादर लोटते हैं, अर्थात सतीचरणों में भी सभी तीर्थ निवास करते हैं। देवों एवं मुनियों का जो तेज है, वह सती-नारियों में स्वभावतया रहता है।

सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः॥

सती स्त्री को चरण धूलि से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। पतिव्रता को प्रणाम करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

पतिव्रतायाश्चरणौ यत्र-यत्र स्पृशेद् भुवम्।
सा तीर्थ भूमिर्मान्येति नात्र भारोऽस्तिपावन॥

पतिव्रता नारी के चरण जहां-जहां स्पर्श करते हैं वह भूमि तीर्थ के समान पवित्र हो जाती है। उस स्थान पर कोई भार नहीं रहता है तथा वह परम पावन हो जाता है।

सालासरवाले बालाजी

- शिवप्रसाद पारीक

श्री रामपायक हनुमानजी का यह मन्दिर राजस्थान के चूरू जिले में है। गांव का नाम सालासर है इसलिये 'सालासरवाले बालाजी' के नाम से लोक-विख्यात है। बालाजी की यह प्रतिमा बड़ी प्रभावशाली है। यह प्रतिमा दाढ़ी-मूंछयुक्त है। मन्दिर काफी बड़ा है। चारों ओर यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें बनी हुई है जिसमें हजारों यात्री एक साथ ठहर सकते हैं। कई दूर-दूर से यात्री अपनी मनोकामनायें लेकर आते हैं और इच्छित वर पाते हैं। यहां सेवापूजा तथा आय-व्यय सम्बन्धी सभी अधिकार स्थानीय ब्राह्मणों को है जो श्री मोहनदासजी के भानजे उदयरामजी के वंशज हैं।

मोहनदासजी ही इस मन्दिर के संस्थापक थे। ये बड़े वचनसिद्ध महात्मा थे। असल में मोहनदासजी रूल्याणी (जो कि सालासर से लगभग १६ मील दूर है) के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम श्री लच्छीरामजी था। लच्छीरामजी के छ पुत्र व एक पुत्री थी। पुत्री का नाम कानीबाई था, मोहनदासजी सबसे छोटे थे। कानीबाई का विवाह सालासर ग्राम में सुखराम जी से हुआ था पर विवाह के पांच साल बाद (उदयराम नामक पुत्र प्राप्ति के बाद) सुखरामजी का देहान्त हो गया तब कानीबाई अपने पुत्र उदयरामजी सहित अपने पीहर रूल्याणी चली गयी। कुछ पारिवारिक परिस्थितियों के कारण अधिक समय तक वहां न रह सकी और वापस सालासर आ गयी। यह सोचकर कि 'विधवा बहन कैसे अकेली जीवन निर्वाह करेगी,' मोहनदासजी भी साथ चले आये इस प्रकार कानीबाई, मोहनदासजी व उदयरामजी साथ-साथ रहने लगे।

श्री मोहनदासजी आरम्भ से ही विरक्तवृत्तिवाले आदमी थे और श्री हनुमानजी महाराज को अपना इष्ट मानकर पूजा करते थे। यही कारण था कि यदि वे किसी को कोई बात कह देते थे तो वह अवश्य पूरी होती थी।

इस तरह दिन गुजर रहे थे एक दिन मोहनदासजी व उदयरामजी अपने खेत में काम कर रहे थे कि मोहनदासजी बोले- उदयराम ! मेरे तो पीछे कोई देव पड़ा है जो मेरा गडासा छीनकर फेंक देता है।" उदयरामजी ने पूछा- 'मामाजी कौन देव है ? तो मोहनदासजी बोले "बालाजी है।" उदयरामजी को यह बात कुछ कम समझ में आयी, घर लौटे तो उदयरामजी ने कानीबाई से कहा, 'मां, मामाजी के भरोसे तो खेत में अनाज नही होना है और यह कहकर खेतवाली सारी बात कह सुनाई। सुनकर कानीबाई ने सोचा कहीं मोहनदासजी सन्यास न लेलें। यह सोचकर उसने एक स्थान पर मोहनदासजी के लिये लड़की तय कर सम्बन्ध पक्का करने हेतु नाई को कुछ कपड़े व जेवरात देकर लड़कीवाले के भेजा। पीछे थोड़ी देर बाद ही जब मोहनदासजी घर आये तो कानीबाई ने विवाह की सारी बात उनसे कही तब वे हंसकर बोले, "पर बाई वह लड़की तो मर गई" कानीबाई सहम गयी क्योंकि वह जानती थी कि मोहनदासजी के वचन सिद्ध हैं। दूसरे दिन नाई लौटा तो उसने भी बताया कि वह लड़की तो मर गयी। इस तरह मोहनदासजी ने विवाह नही किया और पूरी तरह से श्री बालाजी बजरंगबली की भक्ति मे प्रवृत्त हो गये।

एक दिन मोहनदासजी, उदयरामजी, कानीबाई तीनों अपने घर में बैठे थे कि दरवाजे पर किसी साधु ने आवाज दी पर कानीबाई जब आटा लेकर द्वार पर गयी तो वहां कोई नजर नहीं आया सो इधर-उधर देखकर वापस आ गयी और बोली, "भाई मोहनदास दरवाजे पर तो कोई नहीं था।" तब मोहनदास बोले "बाई वे खुद बालाजी थे पर तू देर से गयी।" तब कानीबाई बोली, 'भाई मुझे भी बालाजी के दर्शन करवाइये।' मोहनदासजी ने हामी भरली। दो महिने बाद ही उसी तरह द्वार पर फिर वही आवाज सुनाई दी। इस बार मोहनदासजी खुद द्वार पर गये। देखा बालाजी स्वयं हैं और वापिस जा रहे हैं। मोहनदासजी भी पीछे हो लिये आखिर बहुत निवेदन करने पर बालाजी वापिस आये। पर यह शर्त रख कर कि खीर - खाड से भोजन खिलाओ और सोने के लिये बिना काम में ली हुई खाट देओ तो चलूं। मोहन-

दासजी ने मान लिया बालाजी महाराज घर पधारे। दोनों बहिन-भाई ने बहुत सेवा की। कुछ दिन पूर्व ही ठाकुर सालमसिंहजीके लड़के का विवाह हुआ था दहेज में आई हुई बिल्कुल नई खाट थी सो वही बालाजी के लिये लायी गयी। तात्पर्य यह कि श्री मोहनदासजी बालाजी के अनन्य भक्त थे और बालाजी की भी उन पर असीम कृपा थी।

इस तरह एक दिन मोहनदासजी के मन में आया कि यहाँ एक बालाजी का मन्दिर बनवाना चाहिये। यह बात ठाकुर सालमसिंह तक पहुँची पर बात विचाराधीन ही चल रही थी कि तभी एक दिन गाँव पर किसी की फौज चढ़ आयी। अचानक इस स्थिति के कारण सालमसिंह व्याकुल हो गये तब मोहनदासजी बोले, "डरने की बात नहीं हैं, एक तीर पर नीली झण्डी लगाकर छोड़ दो बजरंगबली ठीक करेगा।" यही किया गया और वह आपत्ति टल गयी। इस घटना से मोहनदासजी की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। सालमसिंहजी ने भी श्रीबालाजी की प्रतिमा स्थापित करने की पूरी ठान ली तब समस्या यह आयी कि मूर्ति कहां से मंगवायी जाय तब मोहनदासजी ने कहा 'आसोटा' से मँगवालो। आसोटा के सरदार के यहां सालमसिंहजी का पुत्र ब्याहा गया था सो तुरन्त ही आसोटा समाचार दिया गया कि एक बालाजी की प्रतिमा भिजवाओ।

उधर आसोटा में उसी रोज एक खेत में किसान जब हल चला रहा था तो अचानक हल किसी चीज से अड़ गया। जब किसान ने खोद कर देखा तो बालाजी की मनमोहक प्रतिमा थी। वह तुरन्त उस मूर्ति को लेकर ठाकुर के पास गया देकर बोला, 'महाराज मेरे खेत में यह मूर्ति निकली है। ठाकुर-साहब ने मूर्ति महलों में रखवाली। ठाकुरसाहब भी विस्मित थे। उन्होंने मूर्ति की यह खासियत देखी कि हाथ फेरने पर सपाट पत्थर मालूम पड़ता है और देखने में मूर्ति लगती है। यह घटना श्रावण सुदी ९ शनिवार सं० १८११ की है। अचानक आसोटा ठाकुर को प्रतिमा में से आवाज सुनाई दी कि, "मुझे सालासर पहुंचाओ" दो बार आवाज आई तब तक तो ठाकुरसाब

ने विशेष ध्यान नहीं दिया, पर जब तीसरी बार बहुत तेज आवाज आयी कि "मुझे सालासर पहुंचाओ।" तभी सालमसिंहजी द्वारा भेजा गया आदमी पहुँच गया। इस तरह थोड़ी देर बाद बैलगाड़ी पर मूर्ति रखवा दी गयी और गाड़ी सालासर के लिये रवाना हो गयी।

दूसरे रोज इधर सालासर में जब मूर्ति पहुंचने वाली थी तो मोहनदासजी सालमसिंहजी तथा सारा गांव हरिकीर्तन करते हुए अगवानी को पहुंचे। सब तरफ बहुत उत्साह और उल्लास था। अब समस्या खड़ी यह हुई कि प्रतिमा कहां प्रतिष्ठित की जाय आखिर मोहनदासजी ने कहा कि इस गाडी के बैलों को छोड़ दो, ये जिस स्थान पर अपने आप रुक जायें वहीं स्थापित करदो। ऐसा ही किया गया। बैल अपने आप चल पड़े और एक तिकोने टीले पर जा रुके इस तरह इसी धोरे पर श्रीबालाजी की मूर्ति स्थापित की गयी। यह स्थापना वि० सं० १८११ में श्रावण सुदी १० इतवार को हुई। मूर्ति की स्थापना के बाद से यह गांव यहीं बस गया। इससे पूर्व यह गांव वर्तमान नये तालाब से उतना ही पश्चिम में था जितना अब पूर्व में है। चूंकि सालमसिंहजी ने इस नये गांव को बसाया अतः सालासर से (सालमसर अपभ्रष्ट होकर) नाम पड़ा इससे पहले वाले गांव का नाम क्या था यह पता नहीं चल सका। कई लोगों का खयाल है कि यह नाम पुराने गांव का ही है पर इसके पीछे कोई तर्कसम्मत प्रमाण नहीं है। अस्तु

प्रतिमा की स्थापना के बाद तुरन्त ही तो मंदिर का निर्माण किया नहीं जा सकता था अतः ठाकुर सालमसिंहजी के आदेश पर सारे गांववालों ने मिलकर झौंपड़ा बना दिया। जब झौंपड़ा बन रहा था तो पास के रास्ते से जूलियासर के ठाकुर जोरावरसिंहजी जा रहे थे उन्होंने जब यह नयी बात देखी तो पास खड़े व्यक्तियों से पूछा, 'यह क्या हो रहा है?" उन लोगों ने उत्तर दिया, "बावलिया स्वामी ने बालाजी की स्थापना की है उसी पर झौंपड़ा बना रहे है। "जोरावरसिंहजी बोले मेरे पीठ में अदीठ हो रही है उसे तो यदि बालाजी मिटादें तो मन्दिर के लिये पांच रुपये चढ़ा दूं।" यह कह कर वे आगे बढ़ गये। अगले स्थान पर पहुंच कर स्नान के लिये कपड़े खोले तो देखा अदीठ नहीं है। उसी समय वापस आकर उन्होंने गठजोड़े की जात दी और पांच रुपये भेंट किये। यह पहला परचा था।

राजस्थान में खाटू श्याम का महत्व

-निरन्जन पारीक (फतेहपुर - शेखावाटी)

हमारा धर्म हजारों वर्षो से उज्ज्वल, तेजोमय व विश्व का कल्याणकारी रहा है, सैंकडों वर्षो के विदेशो हमलों के बाद आज भी पवित्र होने से हम इस पर गर्व करते है। आदि कालसे सत्य सत्य को ज्वालाओं के रूप में देवोमयी पावन भूमि पर महान विभूतियों ने जन्मधारा है जिनमें योगी संत ब्रह्मऋषि तथा देश भक्त मुख्य है। इसके साथ ही विदूषियां जिनमें सीता सावित्री, अनसुईया, पद्मिनी आदि प्रमुख हैं। परलोक तक पति का साथ देकर पतिव्रत धर्म का पालनकर समाज मे पूज्य हुई।

उसी प्रकार से इस पावन पवित्र भूमि पर दान वीरत्व देव अवतारी भी हुए है जिनमें सीकर जिले के खाटू नगरो में प्रकट हुये श्री खाटूश्याम जी हैं जो पूरे भारत वर्ष में भगवान श्री कृष्ण से वरदान प्राप्त कर "राजस्थान में अपना एक विशेष महत्व रखते हैं" और प्रति वर्ष मार्च महिने फाल्गुन शुक्ल पक्ष नवमी से द्वादश तक एक विशाल मेला लगता है, जिसमें राजस्थान के अलावा पूरे भारत के (व्यक्ति) भक्तगण पधारते हैं।

श्री खाटू श्याम का सम्बन्ध महाभारत काल से जोड़ा जाता है, महाभारत में खाटू श्याम का नाम बर्बरीक बताया गया है।

कथानक है कि कौरव पाण्डव संग्राम प्रारम्भ होने के समय एक अनजान वीर ने आकर युद्ध में भाग लेने को इच्छा प्रकट की। दोनों पक्षों के वीरों ने उससे प्रश्न किये तुम्हारी सेना कहां है, तथा तुम किस पक्ष से लड़ोगे ? वीर ने अपने तरकस में से ३ बाण दिखाते हुए कहा- ये ३ बाण ही मेरी सेना हैं तथा मैं उस पक्ष से लडूंगा जो युद्ध में हार रहा होगा और मेरा दावा है कि मैं उस दल को विजयी बनाऊँगा।

उपरोक्त बात सुनकर दोनों सेनाओं के वीरों में सन्नाया व्याप्त हो गया और सभी एक दूसरे का मुख ताकने लगे।

ऐसे समय में पाण्डवों के सारथी श्री कृष्ण ने बर्बरीक के कथन की वास्तविकता जांचने के लिए कहा- वीर ! हम तुम्हारे कथन को सत्य मान

सकते हैं, यदि तुम अपने एक बाण से इस वृक्ष के सारे पत्तों को छेद दो। श्री कृष्ण ने एक पत्ता अपने पैरों तले दबा लिया था बर्बरीक ने बाण छोड़ा और दुसरे ही क्षण सेनानियों ने देखा सामने के वृक्ष के सभी पत्ते बिंध चुके थे ! श्री कृष्ण ने हल्के से अपना पैर हटाया और वे यह देखकरदंग रह गये कि उनके पैर के नीचे का पत्ता भी छिद चुका था।

श्री कृष्ण ने सोचा ऐसे अद्भुत वीर के रहते हमारी विजय कदापि संभव न हो सकेगी अतः इसे पहले ही दूर हटाना चाहिए। उन्होंने इसके लिए सोचा और बर्बरीक के पास जाकर बोले- वीर बर्बरीक। युद्ध प्रारम्भ होने से पहले एक वीर का बलिदान मातृभूमि को देना आवश्यक है इसलिए या तो तुम अपना शीश दो या मैं देता हूँ तब बर्बरीक ने कहा- भगवन्। आप त्रिलोकी के नाथ है आप नहीं रहेंगे तो दुनिया अनाथ हो जावेगी। आप रहने दें मैं ही अपना बलिदान देता हूँ।

किन्तु साथ ही बर्बरीक ने यह भी कहा कि उसकी इच्छा युद्ध देखने की है। तब श्री कृष्ण ने बर्बरीक को वरदान दिया कि तुम मेरी शक्ति से पूरे युद्ध को देख सकोगे। आश्वत होकर बर्बरीक ने स्वय अपना शीश काटकर श्री कृष्ण को दिया। श्री कृष्ण ने उस शीश को एक पहाड़ पर रखवा दिया जहाँ से उसे पूरा युद्ध दिखाई देता रहा। १८ दिन के युद्ध के पश्चात् पाण्डवों की विजय हुई तथा उस समय श्री कृष्ण ने बर्बरीक को वरदान दिया कि तुम हमेशा लोगों द्वारा श्याम नाम से पूजे जाओगे।

उन्ही बर्बरीक का खाटू में हजारों सालों पुराना मन्दिर है और बाबा श्याम नाम से पूरे देश के लाखों लोगों में इनकी मान्यता है।

फाल्गुन मास में नवमी से पूर्णिमा तक (विशेषतः द्वादशी तक) खाटू के मन्दिर में अपार भीड रहती है, इस अवसर पर दर्जनों की सख्या में भजन मण्डलियाँ भी आती है जो कई दिन तक अपने आकर्षक नाच गानों व भजनों के कार्यक्रम रखती है। इसमें कलकत्ता का श्याम बाजीगर मण्डल, हवडा का मित्र मण्डल तथा फतेहपुर शेखावाटी का श्याम मण्डल प्रमुख हैं।

मेले के अवसर पर बाबा श्याम की अनेकों कलात्मक झांकिया निकाली जाती है जिनके दर्शनकर दर्शनार्थी अपने को कृतकृत्य समझते हैं। खाटू मे ही श्याम कुण्ड है जिसमें दर्शनार्थी नहाकर भी पुण्य लूटते है। नाच गानों के मध्य अथाह गुलाल उछलने से जहाँ आकाश लाल हो जाता है वही सारा आकाश "श्याम बाबा" की जय जयकार के नारों से गूंज उठता है।

जीणमाता का परिचय

सवाईसिंह धमोरा

राजस्थान प्रदेश में शक्तिउपासना का सदा से ही प्रभाव रहा है। बीकानेर में करणीमाता, जोधपुर में चामुण्ड, नाडोल में आशापुरा, उदयपुर में अम्बाजी, करौली में केलामाता, फलोदी में लटियाली मां, सकराय में शाकम्बरी, जमवारामगढ़ में जमवाय माता, आमेर में सिल्लामाता, जालोर जिले सूंदा माता, (जसवन्तपुरा के पहाड़ों में) चौथ का वरवाड़ा में चौथ माता का जो स्थान है वही स्थान शेखावाटी में जीणमाता का है।

शेखावाटी क्षेत्र का राजस्थान प्रदेश में अपना बहुमूल्य स्थान है। राजस्थानी साहित्य में शेखावाटी की प्रशस्ति में बहुत कुछ कहा गया है।

इसी शेखावाटी के सीकर जिले के पहाड़ों में सीकर से १४ मील दक्षिण मे जीणमाताजी का मन्दिर अरावली पहाड की शृंखला में अवस्थित है। जयपुर से सीकर आनेवाले रेल-मार्ग पर गोरियां स्टेशन पड़ता है उसमे ८ मील है- जीणमाताजी का मन्दिर। इसके पास ही है पर्वतराज हर्ष जो इस क्षेत्र की सबसे ऊंची चोटी है। जीणमाता के पास ही स्यालू सागर नामक खारे पानी की झील है।

चन्देलों के गौरव का प्रतीक रैवासा का प्रसिद्ध दुर्ग भी समीप ही पड़ता है। शेखावाटी राज्य के संस्थापक राव शेखाजी का स्मृति-मन्दिर भी जीण-माता के समीप मोहनपुर ग्राम की सीमा में है जहां उनका देहावसान हुआ था। जीणमाता के पश्चिम में जीणवास नामक गाँव है जहां शेखाजी के पुत्र रायमलजी और गाडों की लड़ाई विषयक अनेक देवलियां हैं। पहले यह भूमि ठिकाना खूड के अन्तर्गत आती थी।

जीणमाता का मन्दिर पर्वत की घाटी में है इसके तीन ओर पहाड झुका हुआ है पूर्व की तरफ अरण्य है जिसे स्थानीय बोली में ओरण कहते है। मन्दिर की दीवारों पर तान्त्रिकों और वाममार्गियों की मूर्तियां लगी हुई हैं।

मन्दिर का प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख है। मन्दिर के देवायतन का द्वार सभामण्डप में पश्चिम की तरफ है। देवी की आठ भुजाओं वाली मूर्ति है। इस भयंकर मूर्ति की छवि देखते ही बनती है। सभा-मण्डप की पीठ पर दीवारों में शिलालेख भी लगे हुए हैं। सभा-मण्डप की पीठ पर पूर्व की ओर भंवरा की रानी का पहाड़ के नीचे मन्दिर में ही एक मन्दिर है जहां पर जगदेव पंवार का पीतल का सिर और कंकाली का चित्र है। पश्चिम की तरफ एक महात्मा की प्राचीन तपोभूमि है, जिसे स्थानीय बोली में धूणा कहते हैं।

मन्दिर में आठ शिलालेख हैं, जिनसे मन्दिर के निर्माण का अनुमान लगाया जाता सकता है। श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने इन शिलालेखों के आधार पर इस मन्दिर का निर्माण ९ वी १० वीं शताब्दी के लगभग माना है। शिलालेखों का विवरण इस प्रकार है।

(१) एक योद्धा खेमराज की मृत्यु का सूचक शिलालेख सं० १०२९ का है।

(२) मोहिल के पुत्र हुण्ड द्वारा मन्दिर बनाये जाने के उल्लेख विषय शिलालेख सं० ११६२ का परम भट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वीराज (प्रथम) के समय का।

(३) दो शिलालेख सं० ११९६ के हैं। उन्हें महाराजाधिराज परम भट्टारक अर्णोराज के समय का माना जाता है। ऐसा सौभाग्यसिंहजी शेखावत ने माना है।

(४) एक शिलालेख में उदयराज के पुत्र अल्हण के सभामण्डप बनाने का उल्लेख है। यह सं० १२३० का परम भट्टारक अर्णोराज के समय का है।

(५) लोटाणी वंश के ठाकुर श्री देपति के पुत्र श्री वीच्छा के द्वारा मन्दिर के देवरे का जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है सं० १३८२ चैत्र सुदी ६ सोमवार महमद शाही के राज्य के समय का है।

(६) सं० १५२० भादवा सुदी २ सोमवार का है, जिसमें माणिक भण्डारी के वंशज ईसरदास के प्रमाण करने का उल्लेख है।

(७) सं० १५३५ शाके १३९९ आषाढ सुदी १५ सोमवार के शिलालेख में मन्दिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है।

चौहान राज्य नीमराणा की ख्यात, प्रमलियारा राज्य का इतिहास और ठाकुर हरनामसिंह कृत "चौहान-चन्द्रिका" के अनुसार आनोजी चौहान के दो पुत्र हुए गांगेवजी और पीथोजी। आनोजी की मृत्यु के पश्चात् गांगेवजी अजमेर की गद्दी पर बैठे। इनके छोटे भाई पीथोजी इनके साथ रहे। गांगेवजी राजा होने के बाद संभल चले गये। इनके चार पुत्र और एक कन्या हुई। यह कन्या साक्षात् देवी का अवतार थी जो अब जीणमाता के नाम से पूजी जाती है।

आसलपुर निवासी बहीभाट शिवदानसिंहजी ने भी अजमेर के शासक गांगेवजी के पांच पुत्र बताये हैं और एक पुत्री (१) इन्द्रजी (२) चन्द्रजी (३) कनजी (४) हरकरणजी (५) हरसनाथजी (६) पुत्री-जीणबाई।

जीणमाता के भाई कनजी की १७ वीं पीढ़ी में कायमसिंह हुए जिन्होंने मत परिवर्तन कर लिया। कायमखानी राजपूत कायमसिंह के ही वंशज हैं।

प्रसिद्ध सन्त गोगाजी की, जिन्हें पीर कहा जाता है राजस्थान के प्रसिद्ध पांच पीरों में गिनती है।

पाबू, हरबू, रामदे, मांगलिया मेहाह।
पांचू पीर पधारज्यो गोगाजी जेहाह॥

जीणमाता के भाई कनजी के पुत्र अमरपाल और पौत्र जीवराज के पुत्र थे गोगाजी। गोगाजी को जाहर पीर के नाम से संबोधित करते हैं।

हरसनाथ व जीण के सम्बन्ध में एक प्रवाद प्रचलित है कि हर्ष की पत्नी व बहिन जीण दोनों नणद भोजाइयों के बीच किसी बात को लेकर विवाद हो गया और जीण घर से निकल पड़ी। भाई मनाने आया परन्तु वह नहीं मानी। इसी पर्वत पर दोनों भाई-बहिन तपस्या करने लगे। हर्षनाथ और जीणमाता के रूप में वे विख्यात हुए। इस सम्बन्ध का बहुत प्रचलित एक लोक गीत शेखावाटी के घर-घर मे गाया जाता है।

जनश्रुति के अनुसार बादशाह औरंगजेब कुष्ठ रोग से मुक्ति की कामना से एक स्वर्णछत्र देवी को चढ़ाया था जो आज तक इस मन्दिर में विद्यमान है

प्राचीनकाल में जीणमाता के मन्दिर को प्रतिमाह सवामन तेल जयपुर राज्य देता था। बाद में यह तेल अर्धवार्षिक सवामन कर दिया जो हर वर्ष नवरात्रों पर भरनेवाले आश्विन व चैत्र के मेले में आता था। सवाई मानसिंहजी जयपुर के शासनकाल में तत्कालीन गृहमंत्री राजाधिराज हरिसिंहजी अचरोल ने कुछ नकद रुपये निश्चित कर दिये। कहते हैं यह तेल भारत की राजधानी दिल्ली से आता था। तत्संबन्धी लोकमान्यता है कि हर्षनाथ के भैरव मन्दिर की मूर्तियों को तोड़ने के पश्चात् मुगलों की सेनायें जीणमाता के मन्दिर की ओर बढ़ी तो पुजारियों ने देवी की स्तुति की। देवी ने बड़े भंवरे छोड़े। भंवरों के आक्रमण से सेना के पांव उखड़ गये। सेनापति ने करबद्ध हो देवी की स्तुति की। अखण्ड दीप के लिए उक्त तेल भेजने का वचन दिया। उस घटना की स्मृति में पर्वत की ऊंचाई पर भंवरा की राणी का स्थान बना हुआ है। माता सम्बन्धी कई लोकोक्तियां भी हैं:-

देवी सजगी डूंगरा, भैरव माखर मांय।
खाटू हालो श्यामजी, पड्यो दड़ादड़ खाय॥

स्मरण रहे रींगस के पास खाटू स्थित श्यामजी के मन्दिर पर भी उन्हीं दिनों आक्रमण हुआ था व नष्ट कर दिया गया था।

डूंगर हाली खोल मैं, कोई भोपो रै बजावै बीण।
खोल फाड़ नीसरी, आ तो सांची रै माता जीण॥

जीणमाता के पुजारी सांभरिया खांप के चौहान राजपूत हैं। पाराशर गोत्रिय ब्राह्मण भी हैं। मन्दिर में बारह मास अखण्ड दीप जलते हैं, एक दीप घी का दूसरा, तेल का। देवी की मनौती मनानेवालों में शाकाहारी मांसाहारी दोनों ही हैं, परन्तु मांसाहारी बकरों को लेजाकर समर्पण करने की रस्म अदा करवा कर उन्हें अरण्य में लेजाकर काटते हैं। उनके चर्म वृक्षों पर चीर कर डाल देते हैं। भोग वहीं पकाकर खा लेते हैं। जीणमाता की मूर्ति को मद्यपान भी कराया जाता है। कहते हैं कि मूर्ति ढ़ाई प्याला शराब पीती है तथा भक्त इसे देवी का चमत्कार बताते है और बुद्धिवादी मूर्ति की कलात्मकता। जीणमाता का जनमानस पर बहुत व्यापक प्रभाव है। ❀

माउन्ट आबू के अद्वितीय विलक्षण मंदिर-दिलवाड़ा

- बिहारीलाल जैन (पूर्वाध्यक्ष - जैनविश्वभारती)

भारतीय संस्कृति में तीर्थों को उपयोगिता एवं आवश्यकता सदा से ही मानी जाती रही है एवं उनका महत्त्व जन-मानस पर अंकित रहा है। इसी से तीर्थ-स्थानों के प्रति श्रद्धा बढ़ती ही जा रही है।

भारत में २ संस्कृति प्राचीनकाल से ही चली आ रही हैं- वैदिक संस्कृति व श्रमण संस्कृति। दोनों ही संस्कृति के अपने-अपने अनेक तीर्थ स्थान हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण रहे हैं। तीर्थ स्थान बनने की महत्ता इन्हीं स्थानों को प्राप्त हुई जहां किसी महान् आत्मा का आविर्भाव हुआ या जनता-जनार्दन को यथार्थ का बोध, यथार्थ का आचरण व यथार्थ का प्रतिपादन करते हुये आध्यात्मिक शुद्ध जीवन जीने की प्रेरणा ही हो एवं स्वार्थ त्याग कर परमार्थ साधने की हृदय-ग्राही भावना भरी हो।

तीर्थ स्थानों से अनेकानेक लाभ हैं। उस समय की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परम्परायें जानने को मिलती हैं। उन स्थानों से जुड़ी हुई विगत की अनेक जानकारी मिलती है एवं अतीत हमारे सम्मुख प्रकट हो जाता है।

अनेक स्थानों पर अपने-अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा अर्पण करने हेतु मन्दिरों का निर्माण कराया गया। उन मन्दिरों के माध्यम से उससमय की स्थापत्य कला, रहन-सहन व अनेक बातों की जानकारी होती है। प्राचीन शास्त्र, आगम, अंग, उपांग एवं ताड़पत्रों पर हस्तलिखित पाण्डुलिपियां विशेष रूप से इन तीर्थ स्थानों व मन्दिरों में ही सुरक्षित रह सकी हैं। सदियों पहले बनवाये हुये मन्दिर भारत के कोने-कोने में हैं एवं श्रद्धालु जनता गृहस्थी के झंझटों से उन्मुक्त होकर उन स्थानों में जाती है व उपासना एवं धर्मध्यान के द्वारा शान्ति प्राप्त करती है।

प्रत्येक व्यक्ति-पुरुष या महिला की इच्छा तीर्थाटन की होती है। ढलती आयु में तो तीर्थों के दर्शन व सत्संग का लाभ उठाना चाहते हैं।

प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बूढ़े और बूढ़ियायें भी शरीर से अशक्त होते हुए भी दुर्गम मार्गवाले तीर्थ स्थानों पर भी येन केन प्रकारेण पहुंच ही जाते हैं, यह उनकी तीर्थों के प्रति श्रद्धा का ही बल है।

जैन तीर्थ हमारी धार्मिक परम्परा अहिंसा मूलक संस्कृति की ज्योति को प्रज्वलित रखते आये हैं। वे हमारी आस्था के आधार हैं। जन-जन के जीवन का कल्याण करनेवाले हैं। तीर्थंकरों से उद्‌घोषित ज्ञान-भण्डार जिसे आचार्य परम्परा ने जीवित रखा है, उससे भी यह तीर्थ स्थान बहुत सहयोगी रहे हैं।

दिलवाड़ा- माउन्ट आबू (राजस्थान) के जैन मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। इन भव्य विशाल मन्दिरों ने ही इस स्थान को महत्त्वपूर्ण जैनतीर्थस्थान बना दिया है।

दिलवाड़ा माउन्ट आबू से ४ कि० मी० दूरी पर स्थित है। आबू रोड स्टेशन दिल्ली से ७७६ कि० मी० जयपुर से ५०८ कि० मी० व अहमदाबाद से २१३ कि० मी० है। अरावली पर्वतमाला की दक्षिण पश्चिम ४००० फीट ऊंची पहाड़ी पर स्थित माउन्ट आबू अत्यन्त मनोरम (Hill Station) है जहां जीवनोपयोगी सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। यहां भारतीयों के अलावा विदेशी पर्यटक भी बहुत बडी सख्या में बराबर आते रहते हैं। यहां अनेक दर्शनीय स्थान है जिन्हें देखकर दर्शक मोहित हो जाता है।

दिलवाडा में यों तो मुख्य ४ जैन मन्दिर है लेकिन उनमें २ मन्दिर विशेष आकर्षण के केन्द्र हैं। विश्वविख्यात दोनों जैन मन्दिर सूक्ष्म कलात्मक पच्चीकारी व खुदाई के रूप में अद्वितीय हैं। इन मन्दिरों का निर्माण ११ वीं सदी में राजा भीम के. मन्त्री विमलशाह व तेजपाल द्वारा कराया गया था। उस समय इन मन्दिरों पर २६ करोड़ व १२ करोड रुपया खर्च हुआ था।

मुख्य मन्दिर में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ की भव्य मनोहारी प्रतिमा है। इस मन्दिर को 'विमलवसही' कहते हैं। मुख्य मन्दिर का मण्डप ४८ कलात्मक स्तम्भों से युक्त है जिनकी लहरदार मेहरावें आपस में

मनसापीठ- एक परिचय

-ताराचन्द शर्मा, पिलानी

अरावली की पर्वतश्रृंखला बहुत लम्बी चौड़ी है जो राजस्थान में उत्तर से दक्षिण की ओर प्रदेश के बीचोंबीच फैली हुई है। इसी अरावली की एक श्रृंखला झुन्झुनू जिले के गुढ़ा गाँव से लगभग दस किलोमीटर पश्चिम में भी है। इन पर्वत श्रृंखलाओं में मनसापीठ का स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ एक गडरिये पर माँ की कृपा हुई और एक भयंकर गर्जना के उपरान्त पर्वत पृष्ठ पर एक स्तन की आकृति का शिलाखण्ड उभरा। उस स्तनाकृति शक्ति-चिह्न से प्रकाश फैला एवं वह प्रकाश इतना तेज था कि गडरिये उस प्रकाश के सामने नेत्र खोल नहीं सके। कुछ समय बाद उनके नेत्र खुले तो देखा जहाँ

मिलाती हैं। मन्दिर के बाहर प्रांगण में परिक्रमा में विभिन्न जैन तीर्थंकरों की ५२ छोटे देवालयों में प्रतिमायें हैं। सम्पूर्ण मन्दिर इस प्रकार बना हुआ है मानों शिल्पकारों ने अपनी कला की धाराओं को खुलकर वहाँ उदारता से बहाया है तथा एक कलामय जगत की सृष्टि करदी है।

दूसरा मन्दिर तेजपाल का बनाया हुआ है। यह भी विशेष कलात्मक शिल्प आदि कला-कौशल का परिचायक है। इसकी विशेषता यह है कि इसके सुन्दर स्तम्भ, द्वार, छत, गुम्बज, तोरण व भीतरी प्रकोष्ठ की नक्काशी अनुपम है। इसमें २२ वें तीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा है। मन्दिर की दांयी ओर अनेक छोटे मोटे देवालय हैं।

ये दोनों मन्दिर विशद कलात्मक शिल्प और अद्वितीय कला-कौशल के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनमें शिल्प के अलंकरण की अनूठी झलक मिलती है। भारत में उस समय (स्थापत्यकला एव शिल्प किस उत्कृष्ट श्रेणी में थे जिसके स्पष्ट परिचायक ये दिलवाड़ा के मन्दिर हैं।

यदि सही तौर पर निष्पक्ष तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो आगरे का 'ताजमहल' जो विश्व के ७ Wanders में गिना जाता है, -इन मन्दिरों से हर दृष्टिकोण में बहुत पीछे रह जाता है। ऐसे तीर्थ स्थनों को नमन। ●

से प्रकाश फैला था वहाँ पत्थर की पीठ में एक उभार है जिसका स्वरूप मातृ-स्तन से मिलता है और वहीं से उन्हें यह ध्वनि सुनाई पड़ी कि 'मेरी सेवा करो-मैं तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करूँगी।' यह कथा है मातृ विग्रह के अवतरण की यह घटना आज से लगभग २५० वर्ष पूर्व की है। यह स्थान 'खोह' गाँव से तीन किलो मीटर पैदल चल कर पहाडी तक आने के बाद तीन किलो मीटर पहाड़ों की चढ़ाई के उपरान्त आता है। खोह गाँव तक आने के लिये नियमित बसें आती हैं- उदयपुरवाटी, झुन्झुनू, खेतड़ी, नीमका-थाना, रींगस, गुढ़ागौड़जी, गुड़ा, पौख आदि स्थानों से नियमित बसें खोह गाँव से होकर निकलती है। धीरे-धीरे इस पीठ की ख्याति बढ रही है। फलस्वरूप श्रद्धालुओं की सख्या बढ रही है और अब तो पूरे वर्ष भर यात्रियों का तांता लगा रहता है।

पुराणों में भी मनसा पीठ की चर्चा कई स्थानों में आती है और हमारे देश में अनेकानेक मनसा-मन्दिर हैं परन्तु झुन्झुनू जिले की मनसापीठ अनेक रूपों में सबसे अलग है और इसका कारण यही है कि इस मनसापीठ का प्राकट्य स्वयं मां ने किया है। यहाँ का शक्ति-विग्रह नैसर्गिक है- कृत्रिम नही। निराली इसलिए है कि निर्जन पार्वत्य उपत्यका में धरती से लगभग तीन किलो मीटर की चढ़ाई पर अवस्थित यह स्थान आडम्बररहित प्रकृति की छटा से आवृत्त है।

शक्ति-उपासना के सिद्धकाल नवरात्र हैं जिनमें आश्विन और चैत्र का का विशेष महत्त्व है सप्तशतीपाठ, नवार्ण मंत्र, जप, हवन तथा ब्राह्मण भोजन का आयोजन विशेष रूप से इन अवसरों पर किया जाता है। जागरण प्रवचन-सत्संग की भी व्यवस्था होती है जिससे श्रद्धालुओं को लाभ और कल्याण होता है। इस पीठ पर लोग शादी के बाद जात लगाने आते हैं, नव शिशुओं का मुण्डन होता है और सवामीण का आयोजन होता ही रहता है। लोग इसे सिद्ध पीठ मानते हैं और उनकी कामनाएँ पूरी होती हैं। स्व० साधु श्री रामेश्वरदासजी ने भी इस क्षेत्र में तप किया था। अब इस पीठ के प्रबन्ध हेतु एक समिति का गठन हो चुका है जो रजिस्टर्ड है ●

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक-बाबा रामदेव

जेसलमेर जिले में पोखरण कस्बा आज विश्व के सभी भागों में भली प्रकार से परिचित नाम है। १९ मई १८७४ को शांतिपूर्ण कार्यों के लिए पोखरण के बीड़ में भारत ने परमाणु विस्फोट का सफल परीक्षण किया था। उसी पोखरण से तेरह किलोमीटर पर एक ऐसा तीर्थस्थल है जिसमें हिन्दू-मुस्लिम, नर-नारी, स्वर्ण-हरिजन सभी भेदभाव भूल कर अपनी मनोतियां मनाते हैं, याचना-प्रार्थना करते हैं और अपनी ओर से श्रद्धासुमन चढ़ाते हैं।

यह छोटा सा गांव है पर उस मन्दिर के सामने बड़ा खुला मदान है जहां भाद्रपद शुक्ला द्वितीया से एकादशी तक लाखों लोग दूर-दूर से आकर अपने देव-पीर को पूजते है और लौट जाते हैं। राजस्थान ही नहीं गुजरात, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश व दिल्ली से हजारों यात्री वहां पहुचते हैं। इस मन्दिर के पास ही एक 'बावड़ी' है, जिसका निर्माण रामदेव जी द्वारा कराया जाना अनुश्रुत है।

रामदेव जी के जन्म, उनके उपकार व यश के संबंध में कथा प्रचलित है, जिसका अधिकांश इतिहाससम्मत है। इतिहास कहता है कि पृथ्वीराज चौहान के नाना अनंगपाल के कोई पुत्र नहीं था। अत. अनंगपाल पृथ्वीराज को अपना दिल्ली का राजभार सौंप कर तीर्थयात्रा पर गये वापस लौटने पर पृथ्वीराज ने जब उनको सिंहासन सौंपने से इन्कार कर दिया तो अनंगपाल व उनके सहयोगी कलह मिटाने की दृष्टि से दिल्ली त्याग कर मरुस्थल के इस क्षेत्र में आकर शिव के आसपास बस गए। अनंगपाल के परिवार में ही अजमाल हुए। वे भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। तवर राजपूतों के इस परिवार में कृष्णभक्ति कोई नई बात नही थी। अजमाल भी निःसंतान थे।

अपशकुन समझे गये

एक दिन अजमाल प्रातःकाल घोड़े पर बैठ कर बाहर निकले थे कि सामने एक किसान कंधे पर हल लिए, बैलों की रास पकड़े खेत जोतने जा

रहा था। जब उसने अजमाल को देखा तो वह हल नीचे रख कर बैलों को वापस लेकर लौट गया। निःसन्तान व्यक्ति को सामने पाना 'अपशकुन' माना जाता था। इससे अजमाल के मन को गहरी चोट लगी। वह भी तत्काल अपने घर लौटे और बिलख-बिलख कर अपने आराध्य से याचना करने लगे।

श्रद्धा फली

अजमाल की श्रद्धा, विश्वास व पूजा से द्वारकाधीश श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और उनको एक पुत्र प्राप्त हुआ विरमदेव। अजमाल की पत्नी अपने पुत्र को पालने में देखने गई तो अपने पुत्र के साथ ही एक और बालक को उस पालने में खेलता पाया। यह आश्चर्यजनक घटना हुई भाद्रपद शुक्ला द्वितीया को। उन्होंने उस बालक को भी अपना ही बालक मान कर उसको रामदेव नाम देकर पालन-पोषण किया।

बालक रामदेव प्रारम्भ से ही अन्तरमुखी थे। उसने अपने आसपास के लोगों के कष्टहरण के लिए नाना प्रकार की लीलाएँ रची। वह सभी का प्रिय पात्र बन गया। उसने योगसाधना का मार्ग अपनाया तथा संसार की असारता, ससार के सुख-दुःख से अनासक्त रहने का संकल्प किया तथा लोक-कल्याण के मार्ग में जुट गया। जो भी उनके पास आता वह दैहिक लौकिक परलौकिक शांति का अनुभव करता। त्रिताप सन्ताप हरने की उनकी प्रसिद्धि फैलने लगी।

गृहस्थी बने

रामदेवजी का यथासमय निहालदे से विवाह हुआ पर उनका मन गृहस्थी में कहाँ रमता ? वह तो बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय ही जन्मे थे। मारवाड़ के उस क्षेत्र में उनको कृष्ण का अवतार माना जाने लगा।

एक बार एक पालने में उनको एक बालिका मार्ग में पड़ी मिली। उसके माता-पिता का कोई पता नहीं लगा। रामदेवजी उसे उठा कर अपने घर ले आये, उसका नाम रखा गया डालीबाई। रामदेवजी के ही आश्रम में वह

बड़ी हुई। रामदेवजी की जीवनचर्या से प्रभावित होकर वह भी उनका अनुसरण करती हुई उनकी अनुगामिनी बन गयी। योगसाधना से वह रामदेव के जीवनकाल में ही समाधिस्थ हो गई। डालीबाई की समाधि आज भी रामदेवरा में है और लोग उसकी पूजा करते हैं। रामदेवजी के अनन्य भक्तों में भाटी राजपूत हरजी प्रसिद्ध है।

रामदेवजी का यश अब दूर-दूर तक फैलने लगा तो मुसलमानों के पवित्र स्थल मक्का से पांच मुल्ला उनकी योगसाधना व जीवनपद्धति का परिचय प्राप्त करने आये। रामदेवजी ने उनका स्वागत किया और दूध भात परोसा। पांचों उनकी परीक्षा करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि वे अपने भोजनपात्र मक्का में ही भूल आए और उनके अतिरिक्त अन्य किसी पात्र में भोजन नहीं करना चाहते हैं। बड़ा संकट था। अतिथि घर से भूखे जाएं। रामदेवजी ने अपने योग बल से मक्का से वे सभी भोजनपात्र लाकर उनके सामने रख दिए और उनको भोजन कराया। पांचों मुल्ला उनको सम्मान देकर लौट गये। उनकी इस सिद्धि से मुस्लिम अनुयायी बड़े प्रभावित हुए और उनको 'रामसा पीर' कहकर पूजने लगे।

रामदेवजी ने अपने जीवनकाल में अछूत कहे जाने वाले लोगों की भारी सेवा की। यही कारण है कि आज भी हजारों की संख्या में ढेढ़ चमार कामड, मेघवाल, ढ ढो, ढोली, बन्जारे प्रति वर्ष आकर अपना प्रणाम निवेदन करते हैं। ५५ वर्ष की आयु में उन्होंने जीवित समाधि ली।

उनके अनुयायी हिन्दू व मुसलमान सभी है और वे अपने संस्कार अपने धर्मानुरूप करते हैं पर कहीं-कहीं उनके हिन्दू अनुयायी अपने मृत परिजनों के शव को दफनाते भी हैं।

रामदेवजी के इस पवित्र स्थल के पुजारी उनकी वंशपरम्परा के ही होते हैं। वहां नारियल, मिश्री व मखाने चढाये जाते हैं और साथ ही लकड़ी से बने, कपड़े से बने सजे रंग-बिरंगे घोड़े भी। २७ अगस्त से १२ सितम्बर तक वहां मेला भरता है। —(हिन्दुस्तान)

डिग्गी का प्रसिद्ध श्री कल्याणजी का मन्दिर

- एम० आर० रवां

राज मार्ग नंबर १२ जयपुर, सांगानेर, मालपुरा, केकड़ी सड़क पर किलोमीटर ७७ से तीन किलोमीटर लिंक रोड़ गिग्गी ग्राम (मालपुरा) से जुड़ा हुआ है। यहां पर विख्यात श्री कल्याण जी महाराज का जन आकर्षक मन्दिर है। यहाँ पर झनझूलनी एकादशी से भादवा सुदी पूणिमा (वर्षाकाल) पांच दिन तक श्री कल्याण जी महाराज का वार्षिक मेला आयोजित किया जाता है, जिसमें दूर-दूर के श्रद्धालु आकर भाग लेते हैं एवं अपनी मनोकामना पूर्ण कराते हैं एवं मनौतियां मनाते हैं। दूसरा मेला बैसाख सुदी पूणिमा को आयोजित किया जाता है।

ऐसा विश्वास है कि इस मन्दिर में सच्चे मन से दर्शन करने वालों को अनेक कष्टों से राहत मिलती है, उदाहरणतया, अंधों को आंखे, कुष्ठ रोगियों को लाभ, बांझ स्त्रियों को संतान मुंहमांगी मुराद आदि।

श्रीकल्याण जी की मूर्ति की स्थापना समारोह २५०० वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ था तब से नियमित रूप से श्रीकल्याण जी का वार्षिक मेला आयोजित होता आ रहा है। इस मन्दिर में श्री विष्णु भगवान् की एक आदमकद संगमरमर की खड़ी आकृति मूर्ति है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह मूर्ति डिग्ज राजा को प्राप्त हुई थी एव डिग्ग स्थान 'डिग्ज राजा तथा इन्द्र के बीच, हुये संग्राम की स्थली है। इस मूर्ति के चार भुजायें है एव उनमें शंख चक्र, गदा और पद्म (कमल का फूल) अलंकृत हैं, गले में हार, सिर पर मुकुट, हाथ में कंगन, जनेव सिर पर तिलक है। श्रीकल्याण जी को श्रीजी के नाम से भी जाना जाता है।

पुजारी जो गाइड का कार्य भी करते हैं यह भी बताते हैं कि यह मूर्ति महाभारत से पूर्व की है। प्रमाण स्वरूप कहते हैं कि श्रीजी मूर्ति आयुध विपरीत है तथा गदा, चक्र, दाहिने हाथ के स्थान पर बायें हाथ में हैं। मन्दिर में दो पुराने शिलालेख भी हैं जिनमें से एक शिलालेख पर लिखा है- 'कोई हिन्दू यदि इस मन्दिर को नुकसान पहुचायेगा तो उसे गाय की सौगन्ध

है एवं यदि कोई मुसलमान इसको नुकसान पहुंचायेगा तो उसे सूअर को कसम है।' इसके अतिरिक्त यहा पर मुगलबादशाहों के दौर का एक गुंबद है जिसके खंडित अवशेष बिखरी अवस्था में अवलोकनार्थ उपलब्ध है।

यहां पर श्रद्धालुओं के निवास हेतु धर्मशालाओं की समुचित व्यवस्था है एव श्रद्धालुओं की सुवीधा हेतु डिग्गी मोड़ से मंदिर तक पक्का डामर रोड़ बना हुआ है। डिग्गी में दर्शनार्थियों के रहने खाने की सपूर्ण सुविधा उपलब्ध है।

मन्दिर में पूजा पाठ एवं भजन का नियमित कायक्रम प्रतिदिन प्रात: चार बजे से सायंकाल तक चलता रहता है। इसके अतिरिक्त मेले पर विशेष कार्यक्रम इस प्रकार आयोजित किये जाते हैं–

लगभग दिन के एक बजे एक व्यक्ति को भगवान् हनुमान का स्वरूप बनाकर डिग्गी में स्थित सभी दस ग्यारह मन्दिरों में विमान सजाकर आने का निमंत्रण दिया जाता है। श्रीजी के मन्दिर से श्रीकल्याण जी का विमान (डोला) भी उसमें सम्मिलित हो जाता है, जो सबसे आगे रहता है। हर डोले के आगे भजन कीर्तन करती मंडलियां गाती नाचती चलती हैं। और डोले सूरजकुंड (तालाब) तक पहुंचते हैं, जो डिग्गी से लगभग आधा किलोमीटर दूरी पर स्थित है। यहां पर सालिगराम के विग्रह का स्नान एव चरणोदक वितरण किया जाता है। यहां से डोले बाजार में होते हुए अन्यत्र तालाब विजय सागर तालाब तक पहुंचते हैं। यहां पुन: सालिगराम को स्नान करा कर चरणोदक व प्रसाद वितरण किया जाता है तथा श्रीजी के डोले को तालाब में नौका विहार कराया जाता है। विजय सागर पर दो स्थानीय डोले (विमान) रात्रि विश्राम एवं जागरण हेतु वहीं रहते हैं, जिसमें आल इन्डिया रेडियो के कलाकारों व संगीतकारों द्वारा भक्ति गीत-संगीत व अपनी कला का प्रदर्शन किया जाता है। यहां पर भगवान् शालिगराम का पुन: स्नान एवं चरणोदक व प्रसाद वितरण किया जाता है। डोले पुन: बाजार से होते हुये अपने-अपने मन्दिरों की ओर रवाना हो जाते हैं तथा प्रत्येक मन्दिर के सामने भगवान् की आरती की जाती है। सभी लोग एकादशी का उपवास रखते हैं। एकादशी के दिन श्रीजी के अन्न का भोग नहीं लगाया जाता है तथा शाकाहारी सामान ही उपयोग में लाया जाता है।

शिवपुरी चिड़ावा एवं सिद्धपीठ नरहड़

- स्वर्गीय पतराम गौड़

पण्डितजी बुगाला में सिद्ध नहीं बन सके, न नवलगढ़ पसन्द आया और आग्रह करने पर भी पिलानी नहीं आये इसका कारण उन्होंने यह बताया कि चिड़ावा शिवपुरी है, कैलाशपुरी है। उसे छोड़कर नीले बैल नीला ही रथ और नीले ही कपड़े पहनने पर भी वे पिलानी नहीं आ सके। क्यों? क्या पिलानी से कोई दुर्गन्ध आती थी? यदि ऐसी बात थी तो पिलानी निवासी एक व्यक्ति को वरदान क्यों दिया? लोहार्गल जैसे अड़सठ तीर्थों के गुरु के पास वाले नवलगढ को छोड़कर चिड़ावा क्यों आये? चिड़ावा के निवासी संभवतः गर्व का अनुभव करते हैं कि पण्डितजी चिड़ावा को शिवपुरी बता गये, पर चिड़ावा शिवपुरी कैसे है यह किसी को मालूम नहीं और पण्डितजी झूठ बोल नहीं सकते। क्योंकि वे परमहंस है और वाक्-सिद्ध हैं। जो कभी झुठ नहीं बोलता उसी को वाक्-सिद्धि मिलती है, दूसरे को नहीं वाक्सिद्ध ने कह दिया तो न होने पर भी चिड़ावा को शिवपुरी बनना पड़ेगा- अन्यथा पण्डितजी की वाक्सिद्धि पर आक्षेप आ सकता है। ऊपर कहा गया है कि सत्यवाक् को ही वाक्सिद्ध कहते हैं। वाक् अर्थात् जीभ वक्त्र अर्थात् मुंह में होती है। यह वक्त्र शिव का तत्पुरुष रूप है। उस पुरुष को जानना और उस पुरुष के इतिहास को जानना ही सत्य को जानना है। इस पुरुष को कोई तो ब्रह्म कहते हैं और कोई शिव कहते हैं। उक्त तत्पुरुष की सद्योजात मूर्ति ही पुरी है। उसे ब्रह्मपुरी भी कह सकते हैं और उसे शिवपुरी भी कह सकते हैं। अपने आप ही मानव में जिस समय मनन करने की शक्ति पैदा हुई थी, उसी समय शिवपुरी या ब्रह्मपुरी बनी थी। अपने आप मनन करने वाली शक्ति को स्वायंभव मनु कहते हैं।

वेदों के अनुसार उसने सबसे पहले 'देवानां पूरोध्या' का निर्माण किया था जैसे मानवेन्द्र वैवस्वत मनु ने एक दूसरी अयोध्या का निर्माण किया था, जहां राम जैसे इक्ष्वाकुवंशियों ने राज्य किया। पर वेदों में वर्णित देवों की

नगरी अयोध्या भी तो छटा ही न्यारी है। उसहिरण्य कोष वाली नगरी के चक्र और द्वार इतने सुरक्षित हैं कि लोग उस ब्रह्मपुरी अयोध्या को अपराजिता नगरी कहते है। इन्द्र की पुरी होने से वह पुरन्दरपुरी है। वह देवों की और सिद्धों की नगरी है। इसलिए उसे सिद्ध पट्टण कहते हैं। वह देवता और मनुष्यों की मिलन भूमि है। वह नर और नारायण की युग्म भूमि है। इसलिये उसे नरहरिपुर या नरहरि-पट्टण कहते है। युग्मों या जोड़ों का तो वहां राज्य हो रहा है। पहला राजस्थान अयोध्या ही था। व्रात्यों की महिमा से यह चमक उठा था। इसलिये अथर्ववेद के व्रात्सूक्त में सोऽरज्यत तस्माद्राजानः' कह कर बताया है कि व्राच्य चमक उठा था इसी से राजा और राजस्थान शब्द सार्थक हुए। नरहड़ के पीरजी के लिये संभवतः सबसे पहले 'कुतुबे राजस्थान' शब्द का प्रयोग हुआ था। इस प्रकार राजस्थान की यह अयोध्या युग्मों की नगरी है। ब्रह्मपुरी अयोध्या की कल्पना सरकंडे मे निकलने वाली सरयु या सरस्वती के बिना अधूरी है। श्रीमाधोपुर के पास बहने वाला त्रिवेणी वैदिक प्राची सरस्वती है और जोधपुर सुनहरी की घाटी से आने वाली नदी काटली है जो पहले नरहड़ या अजोधन के पास से होकर बहती थी। पहले सरस्वती और काटली दोनों मिलकर बहती थी। सरकंडा काटता है और वक्रान्तरदन भी सब धातुओं को काटता है। इसलिए रसोपनिषद् इस काटने वाली सरस्वती या सरयु को वैक्रान्ता नदी (या काटली नदी) कहता है ब्रह्म और क्षत्र का युग्म संसार में सबसे पहले यहीं विकसित हुआ।

ब्रह्मा के पुत्र ब्राह्मण तो रुद्र के उपासक क्षत्रीय हैं। इस इक्ष्वाकु या सरयु नदी के पास जन्म लेने वाले सर-जन्मा ब्रह्म क्षत्रों से सूर्य और चन्द्रवंश उत्पन्न हुए। उनकी उत्पत्ति-स्थली भी यह नरहरि-पत्तन या अयोध्या ही है। इक्ष्वाकु-कुल के एक ही राजा सुधुम्न ने अपने जीवन काल में इस नगर के दोनों नाम देखे। पुरुष रूप मे सुधुम्न ने अयोध्या पर राज्य किया। तब वह सूर्यवंशी था। बाद में पार्वती के शाप से वह स्त्री बना। तब उसका नाम इला या इड़ा पड़ा। उसने बुध से विवाह किया और पुरुरवा उसका पुत्र हुआ। यह चन्द्रवंश का प्रारम्भ बिंदु है। उस समय से अयोध्या को प्रतिष्ठान

कहा जाने लगा। कोई इतिहासकार कहता है कि उक्त पत्तन शालिवाहिनों के सिक्कों की खोज के आधार पर पूना के पास का पैठन है, कोई कहते हैं कि प्रयाग में झूंसी को ही प्रतिष्ठान पत्तन कहना चाहिए। किन्तु अजोधन और पत्तन दोनों नाम यदि किसी मध्यदेशीय नगर के मिलते हैं तो वे नरहड़ के ही मिलते हैं। नरहड का पट्टण पुराना नाम अब भी प्रसिद्ध है। क्षत्रियों के पराक्रम और रण-कौशल की रंगाई वहां अब भी बोलती है। अष्टादश भुजा वाली भूगर्भित भग्न अंबिका-मूर्ति अब भी वहा यदा कदा ज्वाला के रूप मे जागती रहती है। अनेक बार दग्ध होकर यह 'बजरागेड़ा नगर' कहलाया। यह वस्तुतः सबसे प्राचीन महाश्मशान है।

चिड़ावा और नरहड के बीच अब भी महामाई के मंदिर के भग्नावशेष हैं। माहमाई महामातृका दूसरा नाम है। पुराणों के अनुसार महामातृका ने जिस जगह पाताल में प्रवेश किया उसे प्रतिष्ठान कहते हैं। इसलिए यह स्थान शक्ति पीठ है शिव यहां नंदिकेश्वर के रूप में अबिका के साथ निरन्तर गौ रूप में विराजमान रहते है। इधर के पुराने व्यक्तियों मे नरहड के बैल प्रसिद्ध रहे हैं। इसीलिये इस अयोध्या नगरी को नंदिनी भी कहवे है। इसीलिए केशव स्वामी ने अपने राजराजीय कोष में लिखा है– 'नंदिनी तु स्त्री गौर्यां हरीतम्यां ननान्दरि। सूक्ष्मेलायामयोध्यायां प्रशस्त वास्तु भूतले। इस प्रकार यह अयोध्या नदिकेश्वर की नंदिनी सिद्ध हुई। नदिकेश्वर शिव है। इसीलये पण्डितजी ने नदिनी नगरी को ही शिवपुरी कहा।

नंदिनी गौ है अर्थात् कामधेनु की बेटी और देवताओं की गाय। सबसे पुराने और वासिंदे लोग जहा रहते हैं वहां यह नदिनी गौ नर्दन करती है। उसी वसीठ को संस्कृत में वशिष्ठ कहते हैं जो अयोध्या की मंत्र शक्ति के ज्ञाता होने के कारण मंत्री कहलाये हैं। नंदिनी उनकी गौ है। गाय की शाश्वत मूर्ति इड़ा अर्थात् पृथ्वी है। विश्व की पहली नगरी अयोध्या ही है। यह मानव की चिर आवास भूमि है। चिर आवास को लोग संक्षेप में चिरावा कहने लगे जो इडा अर्थात् भूमि और सरस्वती नदी का चिर मिलन स्थल है। इ शक्ति बीज है और ड शिव बीज है। इसीलिए शिवपुरी या चिर आवास भूमि को

चिड़ावा कहना भी उचित ही है यह चिर रावा या चिरावा चिन्ह प्रावास भी हो सकती है। महादेव चिर कालीन रत्न करते हुए मनुष्यों में प्रा घुसे थे। इसलिए भी इसे चिरावा या चिड़ावा कहते हैं। इसी वात को पुराणों में यों लिखा है कि वशिष्ठ की गौ जब नर्दन करती या टांडती तो अनेक अक्षौहिणी सेनाएं उसके मुख से निकलती थी। इसीलिए नंदिनी के गोमुख अर्थात् मुख्य गौ या पृथ्वी को गोनर्द कहते हैं और नरहड़ के बैल (गौ) प्रसिद्ध हैं नर्द को कई लोग नरद बोलते हैं और कई लोग नरड। मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता आदि ने इस स्थान का नाम नरण, नारडीन और नारायण वताया है। सु-नरों के देने वाली होने के कारण नरद नाम भी उचित लगता है। पुराणों में इस नरद के प्रभाव के कारण नरहड़वाटी का नारद नाम भी आया है जिसका विस्तार पुष्कर से लेकर आसिका, आसी या हांसी तक माना गया है। यह मानवी अयोध्या नगरी नहीं, देवी अयोध्या है।

देवी अयोध्या वराहमिहिर आदि ज्योतिषियों के अनुसार मध्य-देशीया है। वह मत्स्य आदि देशों के समीप बताई गई है। मत्स्य अलवर जयपुर प्रदेश का पुराना नाम है। जयपुर स्टेट की अयोध्या या नरड़ चिड़ावा के पास का एक गांव ही है जिसे आजकल भी नरहड या नरड़ कहते हैं। प्राचीन काल में जब यह बडा नगर अयोध्या कहलाता था। तो इसका प्रमुख विस्तार दक्षिण अर्थात् चिडावा की तरफ ही अधिक रहा होगा। क्योंकि पुरानी मूर्तियां और पुराने अवशेष उधर अधिक मिलते हैं। अयोध्या क्षेत्र का विश्वेश्वर कूप सुप्रसिद्ध पौराणिक तीर्थ माना जाता है। वह भी संभवत: नरड़ के दक्षिण में कहीं जमीन के गर्भ में दवा पड़ा है। शतक्रतुवाहिनी अर्थात् हाकडा या प्राचीन सिन्धु नदी और सरस्वती से घिरे हुए द्वीप को प्राचीन काल में सिन्धु-द्वीप या मध्य-देश नाम पड़ा था।

पुराणों में इस प्राचीन सिन्धु का वर्णन 'समुद्रतनया पृथ्वीतल चारिणी' कहकर किया गया है। इक्ष्वाकु कुल के राजा मरुत इसी जन स्थान या मध्य-देश में तप किया करते थे, जिसके कारण इस भूमि को मरु-भूमि या मरुत

देश कहा जाता था। गुर्जत्रा की तरह यह भूमि शकन्ना भी रही है जिसके कारण अयोध्या का पुराना नाम शाकेत या साकेत पड़ा होगा। शालिवाहन शक संवत् चलाने वाले राजा से बहुत पहले भी शालिवाहन या षोडश वाहन ने साकेत पर राज्य किया होगा जिसके कारण उक्त स्थान का नाम साकेत होना सभव है।

नरहड़ के दक्षिण पूर्व मे जहा कभी-कभी ज्वाला की लपटें प्रकट होती हैं वही जमीन के नीचे नीले रग के पत्थर का सिहासन गड़ा हुआ है जिसे नरहड़ वासियों ने कुछ समय पूर्व देखा था। सभवतः यह इक्ष्वाकुओं या शालिवाहनों का सिहासन हो। शक सूर्य पूजक थे। महाभारत काल में अयोध्या का नाम आविघ्व नगरी था और क्रोष्टु अंधक वंशी यादवों का यहां राज्य था। स्यमत मणि के उपाख्यान में सत्राजीत द्वारा आवघ्य नगरी के उपः स्पृष्टु ताल के पास सूर्य के साक्षात्कार की कथा प्रायः सभी पुराणों में आयी है। वह ताल अब एक गड्ढे के रूप में रह गया। इस ताल की मिट्टी खोदना अब भी धर्म माना जाता है। आजकल उक्त स्थान को गैबी पीर कहते हैं। उसी के समीप हजरत शक्करगंज या शकरबार की दरगाह है। यह पठान मौंटगुमरी जिले के तहत नामक गांव के रहनेवाले थे।। इन्हें स्वप्न में गैबी पीर के दर्शन हुए थे। जिसके कारण ये हांसी से बागड़ जिले में आकर नरहड रहने लगे और गैबी पीर के प्राचीन पुण्यस्थल के निकट ही उन्होंने अपनी झोपड़ी बना ली। मृत्यु के बाद उनकी दरगाह भी वहीं बनी। इस तरह प्राचीन सिद्ध पीठ और तपोभूमि होने के कारण जैसे नरहड़ के पीरजी तहत से नरहड़ आये थे। उसी प्रकार पण्डितजी बुगाला और नवलगढ़ छोड़कर चिड़ावा नरहड़ आये। वस्तुतः चिड़ावा पुराना और पुण्य स्थल नहीं है नरहड़ या अयोध्या का विस्तार वहां था इसलिए चिडावा पुराना और पुण्य-स्थल माना जा सकता है।

नरहड का पुराना नाम अजोधन या अयोध्या था। यह हजरत शक्कर-बार के विषय में उपलब्ध मुसलमानों की तवारीखों से सिद्ध हो जाता है। प्राचीन (देखिए मेरा लेख फरीद शक्करगंज का अजोधन बिरला कालेज

राजस्थान के अन्य दर्शनीय एवं धार्मिक स्थल

नाथद्वारा	(उदयपुर)
कांकरोली	(,,)
श्री गढबोर	(,,)
एकलिंग	(,,)
ऋषभदेव	(,,)
ओसियां	(जोधपुर)
नाकोडाजी	(जोधपुर)
मेंहदीपुर	(बांदीकुई)
रणथंभोर	(सवाईमाधोपुर)
रणकपुर	(पाली)
लोद्रवा	(जैसलमेर)
आबू पर्वत	(आबू)
गोगामेडी	(गंगानगर)
परबतसर	(नागौर)
शीलमाता	(जयपुर)
सीताबाडी	(कोटा)
करणीमाता	(देशनोक)
तिलवाडा	(बाडमेर)
गलियाकोट	(डूंगरपुर)
मुकाम	(बीकानेर)
कैलादेवी	(चवल)
मडोर	(जोधपुर)
भर्तृहरि	(अलवर)
रामदेवरा	(पोकरण)
देवयानी	(सांभर)